स्व० सेठ किसनदास पूनमचंद कापड़िया ग्रन्थमाला नं० ५

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। 1161

# संक्षिप्त जैन इतिहास।

## (भा० ३ खंड ४)

(दक्षिण भारतका मध्यकालीन अन्तिम पादका इतिहास।)

---

लेखक:—

श्री० बाबू कामताप्रसादजी जैन, D. L., M. R. A. S.

ऑनररी सम्पादक, 'वीर' व 'जैनसिद्धान्त भास्कर'

ऑनररी मजिस्ट्रेट और असिस्टेन्ट कलेक्टर

अलीगंज (एटा)

प्रकाशक:—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बर जैन पुस्तकालय,

कापड़ियाभवन—सूरत।

"दिगम्बर जैन" के १९ वें वर्षके ग्राहकोंको मूल भेंट

सेठ किसनदासजी कापड़ियाके स्मरणार्थ भेंट।

मूल्य—सवा रुपया।

# स्व सेठ किसनदास पूनमचद कापडिया स्मारक ग्रंथमाला नं० ५

हमने अपने पूज्य पिताजीके स्मरणार्थ २      ) इनके नामकी एक स्थायी ग्रन्थमाला निकालनेके लिये वीर सं २४६ में निकाले थे जिसकी आमदनीसे आजतक निम्न चार ग्रन्थ नवीन प्रकट करके दिगम्बर जैन के ग्राहकोंको भेंट बांट चुके हैं—

१–पतितोद्धारक जैन धर्म १।)

२–संक्षिप्त जैन इतिहास तृतीय भाग द्वितीय खंड १)

३–पंच स्तोत्र संग्रह सटीक ॥=)

४–भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ।)

और अब यह पांचवां ग्रंथ संक्षिप्त जैन इतिहास तृतीय भाग—चतुर्थ खंड प्रकट किया जाता है और यह भी हमारे दिगम्बर जैन मासिक पत्रके १० वें वर्षके ग्राहकोंको भेंट दिया जाता है।

ऐसी ही अनेक स्मारक ग्रंथमालायें दिगम्बर जैन समाजमें स्थापित होकर उनके द्वारा अल्प मूल्यमें या बिना मूल्य नवीन अप्रकट जैन साहित्य प्रकट होता रहे तो अवश्य जैन साहित्यका बहुत कुछ प्रचार सुगमतासे हो सकेगा।

—मूलचन्द किसनदास कापड़िया—प्रकाशक।

# दो शब्द ।

प्रस्तुत पुस्तक "संक्षिप्त जैन इतिहास" के तीसरे भागका चौथा खंड है। इस खंडमें कलचूरि और होयसल राजवंशोंके शासनकालमें जैनधर्म और समाजका इतिहास संकलित करनेका प्रयत्न किया गया है। संभवतः हिन्दी साहित्यमें यह पहली पुस्तक है जिसमें दक्षिणके होयसल राजाओंका विस्तृत विवरण सप्रमाण लिखा गया हो। इस कालमें देशकी समृद्धि हुई, देशको "होयसल-कला" नामकी एक नई शिल्प प्रणाली मिली जो अभूतपूर्व है और अहिंसा संस्कृति भी उन्नत हुई। जैनधर्मका पुनः अभ्युदय होकर किस तरह वह अस्तगत हुआ, पाठकगण प्रस्तुत खंडमें यह भी पढ़ेंगे और भविष्य निर्माणमें उससे शिक्षा लेंगे।

इस खंडको रचनेमें हमें विविध स्रोतोंसे साहाय्य मिली है। हम उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। खासकर सर्वश्री पं० के० भुजबलि शास्त्री और पं० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्यके आभारी हैं, क्योंकि उन्होंने हमको जैन सिद्धान्त भवन आरासे आवश्यक पुस्तकें भेजकर सहायता प्रदान की है।

पूर्वपरिपाटीके अनुसार हमारे मित्र श्री० कापड़ियाजी इस 'खंड' को भी "दिगम्बर जैन" के ग्राहकोंको उपहारमें देकर इसके प्रचारमें सहायक हुये हैं। एतदर्थ हम उनके आभारको भी नहीं भुला सकते।

विनीत—

अलीगंज (एटा)<br>श्रुतपंचमी १९४६

कामताप्रसाद जैन।

# निवेदन।

सुप्रसिद्ध जैन ऐतिहासज्ञ व 'वीर' पत्रके सुयोग्य संपादक श्री० बा० कामताप्रसादजी १ –१५ वर्षोंसे २ वर्ष पूर्वका जैन इतिहास बड़ी भारी खोज व शोध पूर्वक तैयार करते रहते हैं व हम उसे प्रकट करके भेंट या अल्प मूल्यमें उसका प्रचार करते रहते हैं।

इस प्रकार हम इतिहासका प्रथम भाग (१०) दूसरा भाग प्रथम खंड १॥), व दूसरा खंड १), व तीसरा खंड ।) हम प्रकट कर चुके हैं व भेंटमें बांट चुके हैं तथा प्रथम भाग तो खतम होनेसे व उसकी बार बार मांग आनेसे उसकी दूसरी आवृत्ति भी निकल चुके हैं।

अब तीसरे भागका यह चौथा खंड पाठकोंके सामने है। जिसमें इस लेखकने अनेकानेक अंग्रेजी हिन्दी ग्रन्थ तथा शिलालेख, सरकारी गजेटियरोंको देखकर व मनन करके ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दिमें होनेवाले कलचूरी राजवंश व होय्सल राजवंशमें होनेवाले जैन राज्योंका अभूतपूर्व जैन इतिहासका संकलन किया है जो इतिहासको जानने-वालोंके लिये अमूल्य सामग्री है। श्री बाबू कामताप्रसादजीका यह कार्य चालू ही है और आगे हम इतिहासके और भाग भी आप तैयार करेंगे धन्य है आपकी जैन साहित्य सेवाका!

पाठकोंके सुभीताके लिए इस ग्रन्थमें अंकेवार सूची व विषय सूची भी दे दी गई है इस परसे ही पाठकोंको यह मालूम हो

# विषय सूची।

जायगा कि लेखकने इसके सङ्कलनके लिये कितना परिश्रम किया है। तथा इसमें कैसे कैसे जैन राजाओंका इतिहास वर्णित है। इस इतिहासकी कुछ प्रतियां विक्रयार्थ अलग भी निकाली गई हैं। आशा है जैन इतिहासके प्रेमी पाठक ऐसे अप्रकट जैन साहित्यको अधिकाधिक अपनायेंगे ही।

लेखकका नवीन फोटो भी हमे प्राप्त हुआ है जो इस इतिहासमें प्रकट किया जाता है।

आशा है सुज्ञ लेखक जहांतक हो शीघ्र ही इस इतिहासका कार्य पूर्ण कर देंगे तो हम भी उसे प्रकट करनेमें किसी न किसी प्रकारसे प्रबन्ध करेंगे ही।

शुल्क लेकर काम करनेवाले तो बहुत विद्वान होते हैं लेकिन ऑनरेरी रूपसे ऐसी साहित्यसेवा करनेवाले विरले ही होते हैं। अत जैन समाज इस विषयमें बाबू कामताप्रसादजीका जितना भी उपकार माने कम है।

इस ऐतिहासिक साहित्यकी कुछ प्रतियां विक्रयार्थ अलग भी निकाली गई हैं, आशा है उसका भी शीघ्र ही प्रचार हो जायगा।

वीर स० २४७२
आषाढ़ वदी ६
ता २०-६-४६

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
प्रकाशक।

# विषय सूची।

जायगा कि लेखकने इसके सकलनके लिये कितना परिश्रम किया है। तथा इसमें कैसे कैसे जैन राजाओंका इतिहास वर्णित है। इस इतिहासकी कुछ प्रतियां विक्रयार्थ अलग भी निकाली गई हैं। आशा है जैन इतिहासके प्रेमी पाठक ऐसे अप्रकट जैन साहित्यको अधिकाधिक अपनायेंगे ही।

लेखकका नवीन फोटो भी हमें प्राप्त हुआ है जो इस इतिहासमें प्रकट किया जाता है।

आशा है सुज्ञ लेखक जहांतक हो शीघ्र ही इस इतिहासका कार्य पूर्ण कर देंगे तो हम भी उसे प्रकट करनेमें किसी न किसी प्रकारसे प्रबन्ध करेंगे ही।

शुल्क लेकर काम करनेवाले तो बहुत विद्वान होते हैं लेकिन *ऑनरेरी रूपसे ऐसी साहित्यसेवा करनेवाले विरले ही होते हैं।* अत जैन समाज इस विषयमें बाबू कामताप्रसादजीका जितना भी उपकार माने कम है।

इस ऐतिहासिक साहित्यकी कुछ प्रतियां विक्रयार्थ अलग भी निकाली गई हैं, आशा है उसका भी शीघ्र ही प्रचार हो जायगा।

वीर स० २४७२
आषाढ सुदी ६
ता २०-६-४६

निवेदक—
**मूलचन्द किसनदास कापड़िया,**
प्रकाशक।

# संकेताक्षर सूची ।

निम्नलिखित संकेताक्षरोंमें फुटनोटों द्वारा प्रमाण-ग्रन्थोंका उल्लेख यथावश्यक किया गया है। पाठक उन्हें समझलें—

ASM आसमै=आर्केऑलॉजीकल सर्वे ऑफ मैसूर (एनुअल रिपोर्ट १९२९, नं०, ३१ व ३२)-बंगलोर

एका०=एपीग्राफिया कर्णाटिका Epigraphia Carnatica।

कापण०=दी कनड इन्सक्रिप्शन ऑफ कोप्पल, हैदराबाद (निजाम)

JA जेए०=जैन एण्टीक्वेरी (त्रैमासिकपत्र) आरा।

जेक०=जैनीज्म एण्ड कर्णाटक कल्चर, सन् १९४० (धारवाड़)

जेशिस०=जैन शिलालेख संग्रह (माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई) सं० प्रो० हीरालालजी।

दक्षिण०=दक्षिण भारत, जैन व जैनधर्म, सं० बा० पाटील वकील सांगली।

बगा०=बम्बई गजेटियर (Gazetoer of the Bombay Pres)-Camball, 1896)

बंप्राजेस्मा०=बम्बई प्रान्तीय जैन स्मारक (सूरत)—सं० ब्र० शीतल प्रसादजी।

भाप्रारा०=भारतके प्राचीन राजवंश, श्री विश्वेश्वरनाथ रेउकृत (बम्बई)

मराप्रास्मा०=मध्य प्रान्त और राजपूताना प्राचीन जैन स्मारक, ब्र० शीतलप्रसादकृत (सूरत)

मेजै०=मेडियेविल जैनीज्म, श्री भास्कर आनन्द सालेतोर (बम्बई)

मआरि०=आर्कयॉलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑफ मैसूर (बंगलोर)

मेकु०=मैसूर एण्ड कुर्ग फ्राम इन्स्क्रिप्शन्स, श्री लूई राइसकृत।

सीवैल०=Lists of Inscrips of South India (Arch Sur of S India) II), 1884

संजैइ०=संक्षिप्त जैन इतिहास (सूरत) श्रवणबेल्गोल—गाइडबुक मद्रास।

# संक्षिप्त जैन इतिहास

## भाग ३- खंड ४।

---

## प्राक्कथन।

श्री जिनेन्द्रदेवका प्रतिपादा हुआ धर्म जैनधर्म है और उस धर्मके माननेवाले जैनी हैं। जिनेन्द्रसे मतलब उन विजयी वीरसे है जो रागद्वेषादि मानवी कमजोरियोंको जीतकर त्रिलोक और त्रिकाल दर्शी बनते हैं। उनके अनुयायी जैनी उनके पद—चिन्हका अनुसरण करके अहिंसक वीर होते हैं। रागद्वेषादि आन्तरिक शत्रुओंको परास्त करना उनका जीवन लक्ष्य होता है। वह स्वयं जीवित रहते हैं और अन्य प्राणियोंको न केवल जीवित रहने देते, बल्कि उन्हें सफल जीवन बितानेके योग्य बनानेमें सहायक होते हैं। जिनेन्द्रका उपदेश लोककल्याणके लिये होता है। उनके समवसरणमें नर-नारी और देव—देवियां ही नहीं पशु तक पहुंचते हैं और अपना अपना आत्महित साधते हैं।

गंगाकी पवित्र धारामें नर—पशु सभी नहाते हैं शीतकालीन सूर्यके सुखद आतापमें सभी अपनेको सुखी बनाते हैं, प्रकृति भेदभाव नहीं जानती-उसके नियम सबके लिये एक समान हैं।

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
| --- | --- | --- | --- |
| ४० | १६ | ऋषिहक्की | ऋषिहल्ली |
| ४२ | ८ | पीहरसल | पोयसल |
| ४३ | ३ | माना | मानो |
| ४५ | ८ | बना | बंटा |
| ५२ | १? | पोरसल | पोयसल |
| ६४ | ८ | रामा | राज |
| ६६ | १७ | युद्धसे उण | युद्ध सेउण |
| ६८ | ८ | यह नहीं कि | × —— |
| ७० | ५ | पश्चिम | पश्चिममें |
| ७२ | १६ | के | को |
| १३१ | १८ | की | थी |
| १३२ | फुटनोट १ | मल्लिका | मल्लिका |
| १३३ | — | फुटनोटोंके नं० २, ३, १ के बजाय १… | |
| १३४ | ७ | हुलिपूर | हुलिपूर |
| १३४ | १४ | जो | तो |
| १३५ | ६ | किया गया था। | किया था। |
| १३६ | ८ | जैनतत्व | जैनत्व |
| १३९ | १० | की | का |
| १४० | १३ | मुला | भुलाया |
| १४३ | २ | जैनम- | नैरम्य पूर्ण स्वा… |

## प्राक्कथन ।

जो जिनेन्द्रदेवका प्रतिपादा हुआ धर्म जैनधर्म है और उस धर्मके माननेवाले जैनी हैं। जिनेन्द्रसे मतलब उन विजयी वीरोंसे है जो रागद्वेषादि मानसी कमजोरियोंको जीतकर त्रिलोक और त्रिकाल दर्शी बनते हैं। उनके अनुयायी जैनी उनके पद-चिह्नका अनुसरण करके अहिंसक वीर होते हैं। रागद्वेषादि आन्तरिक शत्रुओंको परास्त करना उनका जीवन उद्देश्य होता है। वह स्वयं जीवित रहते हैं और अन्य प्राणियोंको न केवल जीवित रहने देते, बल्कि उन्हें सफल जीवन बितानेके योग्य बनानेमें सहायक होते हैं। जिनेन्द्रका उपदेश लोककल्याणके लिए होता है। उनके समवशरणमें नर नारी और देव-दानव ही नहीं पशु तक पहुंचते हैं और अपना अपना आत्महित साधते हैं।

गंगाकी पवित्र धारामें नर-पशु सभी नहाते हैं शीतकालीन सूर्यके सुन्दर आतपमें सभी अपनेको सुखी बनाते हैं, प्रकृति भेदभाव नहीं जानती-उसके नियम सबके लिए एक समान हैं।

प्रकृति वस्तुका स्वभाव है । उस वस्तु स्वभावका निरूपण जिन धर्म है । इसलिये जैनधर्म किसी समुदाय-विशेषके लिये सीमित और नियमित नहीं है । उसके लिये न कालका बन्धन है और न जातिका । जिस किसी भी कालका कोई भी प्राणी जो अपना आत्महित साधना चाहे, वह जैनधर्मसे लाभ उठा सकता है । जैन सघका द्वार उसके लिये खुला हुआ है। यही कारण है कि जैनधर्मके अनुयायी अज्ञात अतीतमें भी मिलते हैं और आगे भी मिलते रहेंगे । वस्तु स्वभावरूप धर्म शास्वत होना ही चाहिये । अत जैन इतिहासकी रूपरेखा और आकृति लोकके अनादि निधन रूपमें गुम्फित है।

' सक्षिप्त जैन इतिहास ' के पूर्व भागोंमें यह व्याख्या निरूपित हो चुकी है । इस कल्पकालीन जैन इतिहासका विवेचन भी उनमें प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेवजीके समयसे लिखा गया है । इस कल्पकालमें जैन धर्मका पुनरुद्धार भी ऋषभदेव द्वारा ही हुआ था—ऋषभदेव ही जैन धर्मके सस्थापक है । उन्होंने सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर जैन धर्मका उपदेश उस समय दिया था, जब कि अन्य कोई भी दर्शन या सम्प्रदाय अस्तित्वमें न था । लोक समुदाय मिथ्या पाखण्डमें बह रहा था अज्ञान पशुबल ही उसका पथप्रदर्शक था । लोक सभ्यजीवन बिताना नहीं जानता था—आकाङ्क्षा और वाञ्छामें फसा हुआ वह आपसमें वैसे ही लड रहा था जैसे कि युरुपके पार्थिवताके पुजारी (Materialists) राष्ट्र आज लड रहे हैं ।

भ० ऋषभदेवने लोकको सभ्य और सुसस्कृत जीवन यापन करना सिखाया और उसे सत्य धर्मके दर्शन कराये । सम्यग्दर्शन,

सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र रूप मोक्षमार्ग इसे बताया। लोक इस मार्गका पर्यटक होकर अपनी ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति करनेमें सफल हुआ। उसका जीवन अहिंसामय बना। इस अहिंसा धर्मका ही विकृत रूप वैदिक क्रियाकाण्डमें रूपान्तर देखनेको मिला। परन्तु वह बादकी चीज है और धर्मतत्वके अनुरूप न होनेके कारण अब वह बहुत समयसे मात्र नामनिःशेष है।

इसप्रकार जैनदृष्टि और मान्यताके अनुसार जैनधर्म वस्तुस्वभावरूप सत्यधर्म प्रतीत होता है जो हमेशा अहिंसामय रहा है। जिससे जिनका सम्पर्क किसी न किसी रूपमें रहा मिलता है, ऐसे वैदिक, बौद्ध और शाक्त आदि धर्म इसके बादकी उपज हैं। संक्षिप्त जैन इतिहास के पूर्व प्रकाशित भागोंमें जैनधर्मकी इस प्राचीनताका प्रामाणिक दिग्दर्शन कराया जा चुका है। अतः उसको यहां दुहराना व्यर्थ है।

चालुक्यराज्यमें जैनधर्म—

प्रस्तुत इतिहासके गत भाग ३ खंड २ में दक्षिण भारतके आन्ध्र, मध्यकालका इतिहास लिखा जा चुका है जिसमें चालुक्य और राष्ट्रकूट साम्राज्यकालमें जैनधर्मके अस्तित्वका महत्वपूर्ण चित्रण किया गया था। निस्सन्देह बादामी और कल्याणीके चालुक्य नरेशोंके समयमें जैनधर्म उन्नत रूपमें था।

इस खंडमें यद्यपि उसका विवरण किया जा चुका है फिर भी यहां कुछ और उल्लेख करना असंगत नहीं है। बादामीके चालुक्य राज्यमें प्राय राजा और प्रजा सभी जैनी थे। सम्राट् कीर्तिवर्मा द्वितीयके राज्यकालमें [illegible] आचार्य प्रभाचन्द्र और उनके शिष्य

विनयनन्दि, वासुदेव, और श्रीपाल प्रसिद्ध जैनाचार्य थे। उनके उपदेशसे धर्मनामक गावुंड (कृषक?) ने पाडिवूरके शासक सिंदरस और माधवत्तिग्सकी अनुमति लेकर एक जिनालय बनवाया था।

सम्राट् विजयादित्यके शासनमें विक्किगणकने (७३२ ई०) पुरिगेरेक शंख जिनालयको दान दिया था। रानी वेन्नूरके समयमें (८५९ ई०) नागुलर बोल्लब्बेने एक जिनालय निर्माया और उसकी सुव्यवस्था के लिये सिंहवुरगणके वागनन्याचार्यको भूमिदान किया।

इसी प्रकार कल्याणीके चालुक्य नरेशोंकी छत्रछायामें जैनधर्म और भी अधिक उत्कर्षको प्राप्त हुआ था। इस समयके अनेक उपलब्ध शिलालेख इस बातके साक्षी हैं। यह बात पहले पाठक पढ चुके हैं, परन्तु यहा भी और पढिये और अनुमान कीजिये कि उस समय जैनधर्म लोककल्याणका कैसा अद्वितीय साधन बना हुआ था! सन् ११४८ ई० में जब जगदेकमल्लका राज्य था तब मूलसंघ सूरस्थगण चित्रकूटगच्छमें दिगम्बराचार्य हरिनदि प्रख्यात थे। उन्होंने अपने वचनामृतसे भव्योंका उपकार किया था। नेरलिणेके मल्लगावुंड उनकी वाणीसे प्रभावित हुआ और मल्लिनाथ जिनेश्वरके मंदिरके लिये उसने दान दिया।

उस समय मदिर जैन संस्कृतिके केन्द्र बने हुये थे—उनमें चारों प्रकारकी दानशालायें और श्रुतभंडार होते थे। इसी लिये उनके व्ययकी पूर्ति भक्तजनोंके दानसे होती थी। सब ही वर्णके लोग जिनेन्द्रदेवके भक्त थे।

1–JA., IX., 61–62

आहवमल्ल ( सोमेश्वर ) के समयमें ( १०५४ ई० ) कतिपय अन्य ब्राह्मणोंने मंडिकेयूर ग्राम जिनमंदिरके लिये वीरनंदि सिद्धान्तिके शिष्य देसीगणके पाहुमेयकि कल्होपवासीको भेंट किया था। त्रैलोक्य-मल्ल (सोमेश्वर प्रथम) की राजसभाके रत्न कुन्दकुन्दान्वय देसीगणके आचार्य इन्द्रकीर्ति प्रसिद्ध आचार्य थे। गंगपेरम दुर्विनीतने एक जिनालय बनवाया था। इन्द्रकीर्ति आचार्य उसकी सुव्यवस्था करते थे।

इन्द्रनंदिके शिष्य वादीभसिंह चन्द्रनन्दि पंडित कन्तिकर जिनालयमें व्याख्याता थे। नोकय्य सेट्टि और उसकी पत्नी पद्मावती अक्कने उन्हें एक दान प्रदान किया। स्त्रियां भी उस समय धर्मकार्यमें अग्रसर रहती थीं। नन्दीश्वर व्रतका माहात्म्य विशेष था। नन्दीश्वर अष्टमीको ( १०७४ ई में ) मन्त्र वंशकी अक्कादेवी आविका पुरिगेरे गोसमट्ठि बसदीकी वन्दना करने आई—उस समय बलात्कारगणके मेघविमुक्त-आर्यके शिष्य त्रिभुवनचन्द्र वहां विद्यमान थे जिन्हें दान दिया। उस समय मुमुक्षुजन सल्लेखना व्रतका पालन भी मृत्यु समय उत्साहसे करते थे।

सूरस्थगणके श्रीनन्दि पण्डित और उनके ज्येष्ठ सहपाठी मासक-मैंदिने सल्लेखना व्रत द्वारा शरीर विसर्जन किया था। श्रीनन्दिने सन १०७७ में पुरिगेरेके 'अनेसज्जेय बसदि' नामक मंदिरमें सल्लेखना व्रत धारण किया था। स्त्रियां मंदिरोंकी सुंदर व्यवस्था रखती थीं। अनेक-बसदि-मंदिरकी प्रबन्धक सचिवकी पुत्री महादेवी थी। उस समय गुणकीर्तिके शिष्य देवकीर्ति पंडित विद्यमान थे। तत्कालीन मूलसंघके साथ २ यापनीय संघ भी प्रचलित था।

कोपण त्रैविद्यदेव जयकीर्ति, नागचन्द्र सिद्धान्ति इस संघके

प्रसिद्ध आचार्य थे। यापनीय सघमें एक 'श्रीकुमुदिगण' भी था, जिसमें श्रीकीर्ति प्रभामुनीन्द्र और शशाङ्क मुनीन्द्र ही थे। इसी गणके अनन्तवीर्यने कई सत्कथायें लिखीं थीं। सन् १०४५ में इस गणके पिरिय गोवर्धनदेवके लिये मुगुंडके शासक नारगावुंड चावुडने 'सम्यक्त्व रत्नाकर चैत्यालय' निर्माण कराया था। उसीमें एक 'नाटकशाला' भी बनवाइ थी। सन् १०४७ में गोकागेकी अक्कादेवीने होगरिगच्छ वीरसेन गणके नागसेन पंडितको दान दिया था, जो विक्रमपुरके (अरसीवाडि) के गोणद वेंडगि जिनालयसे सम्बन्धित थे।

सन् १०५९ में वीरय्यसेट्टिने धर्मवोल्ल नामक स्थानपर एक जगद जिनालय बनवाया था। सोमेश्वर द्वितीयके राजमंत्री दंडनायक बलदेव थे, जो सूरस्थगण चित्रकूटान्वयके आचार्य नयसेनके शिष्य थे। इस गणमें कनकनदि सैद्धान्तिकके शिष्य श्रीनदि परवादी-शारभ-भेरुन्ड प्रख्यात आचार्य थे।

हुल्लिय्यठवाज्जिकेने दण्डनायक बलदेवके नामपर सरटवुगमें 'बल-देव जिनालय' स्थापा था। सूरस्थगण चित्रकूटान्वयका एक मंदिर राजधानी पोन्गुन्डमें 'अरसरबसदि' नामक था। वहा कनकनदि, उत्तर-भट्टारक, भास्करनदि अर्हन्नदि और आर्य पण्डित आचार्य सन् १०७४ तक विद्यमान थे। विक्रम त्रैलोक्यमल्लके राज्यमें (सन् १०६६-६७ ई) आयिचमय्यने वेण्णेवुरमें एक मंदिर मूलसंघ चन्द्रिका वाटवशके शान्तिनदिके उ[illegible] निर्मापा था। अर्हनन्दि बेट्टिदेवके उपदेशसे सन् १११२ में [illegible] ट्टिने कण्यवुरिमें पार्श्वनाथ भगवान्को स्थापा था।

उस समय स्त्रियाँ अपने पतिदेवकी निःश्रेयसके लिए दान दिया करती थीं । ऐसा ही एक दान अपने पतिदेवके पुण्य हेतु नागियक्कने कोल्लापुरके तीर्थंकर शङ्खजिनालयको सन् १०८१ में दिया था । चालुक्य सम्राट् भरतके पुत्र कुमार तैलपने सूर्यग्रहणके समय पोन्नम-बीकी दानशिक्षुर बसदिको दान दिया था । मनुक्षग्राम बीमुर तीर्थ विपति प्रभाचन्द्र भविष्यके धर्मोपदेशको ग्रहण करके त्रिभुवनमल्लके शासनकालमें सचिवके भ्राताओंने शान्तिनाथ भगवानका 'ब्रह्मजिनालय' निर्माण था और सेठिम्पके 'अपकजिनालय' की भूमि भी प्रदान की थी । इन शासकोंमें धर्मिष्ठ विभु प्रमुख थे । इस प्रकार कल्याणीके चालुक्य नरेशोंके समयके उपर्युल्लिखित एवं ऐसे ही और भी शिलालेखोंसे उस समयके जैन धर्मका रूप रंग और उसका प्रभाव स्पष्ट होता है ।

उपरान्त कालमें—

चालुक्योंके उपरान्त दक्षिणापथके कर्णाटक आदि देशोंपर कलचूरी वंशके राजाओंका अधिकार हुआ था और उनके पश्चात् होय्सल वंशके राजालोग साम्राज्याधिकारी हुये थे । प्रस्तुत खंडमें पाठक इन राजाओंका परिचय प्राप्त करेंगे और यह देखेंगे कि इन राजाओंके समयमें जैनधर्मकी क्या स्थिति रही ? जैनधर्मको शैव एवं वैष्णव धर्मके आचार्योंके हाथोंसे कितनी हानि उठानी पड़ी ? इन विषम कठिनाइयोंको सहन करते हुये भी जैनधर्म कैसे जीवित रहा ? उसका अस्तित्व सूर्य क्यों एकदम अस्त नहीं हुआ ?

# कलचूरी-राजवंश।

## ( सन् ११५६-११८७ ई० )

उत्पत्ति—

मूलतः कलचूरी राजवंशके शासकगण उत्तर भारतसे सम्बन्धित थे—उनके पूर्वज विन्ध्याचलके आसपास रहते थे। शिलालेखोंमें इस राजवंशकी उत्पत्ति सहस्रार्जुन अथवा कार्तवीर्य नामक सम्राट्से बताई गई है। जिनकी राजधानी नर्मदातट पर माहिष्मती नगरी थी[1]। महाकवि कालिदासने लिखा है कि इस कार्तवीर्यने लंकेश्वर रावणका मानमर्दन किया था और उसे अपने कारागृहमें रक्खा था। इसके विपरीत जैन 'पद्मपुराण' का कथन है कि माहिष्मतीके राजा सहस्र-रश्मिकी जलक्रीडाके कारण रावण क्रुद्ध हुआ और दोनों राजाओंमें परस्पर युद्ध छिडा। सहस्ररश्मि शक्तिशाली रावणका मुकाबिला न कर सका। रावणने उसे बन्दी बनाया, परन्तु जैन मुनि शतबाहुके कहनेसे उन्हें छोड दिया। सहस्ररश्मिके लिये अपमानित जीवन बिताना दूभर होगया। उसने अपने पुत्रको राज्यभार सौंपा और वह स्वयं जैनमुनि होकर तपश्चरण करने लगा।

जैन कथाके सहस्ररश्मि और कालिदास एवं शिलालेखोंके

---

१—मराप्रास्मा०, भूमिका पृष्ठ ८

२—'ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेनयस्य विनिश्वसद्वक्त्रपरम्परेण।
कारागृहे निर्जितवासवेन लंकेश्वरेणोषित मा प्रसादात्॥'
—इति रघुवंश।

३—पद्मपुराण।

सहस्रबाहु कार्तवीर्य एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं । दोनोंसे उनका माहिष्मतीका राजा होना और लंकेश्वरके साथ युद्ध करना एक है । हिन्दू लेखकोंकी दृष्टिमें रावण ऐसा हेय रहा है इसीलिए उन्होंने रावणकी पराजय बताई है। जो हो, यह प्रगट है कि कलचुरी वंशके पूर्वजका सम्बन्ध जैन धर्मसे रहा है ।

जैनधर्मसे सम्बन्ध—

आधुनिक विद्वान् भी अपने अन्वेषण द्वारा इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि कलचुरी वंशके राजाओंमें जैनधर्मके पोषक थे। जैनधर्मके अनन्य उपासक राष्ट्रकूट वंशके नरेश उनके निकट सम्बन्धी थे। दोनों राजवंशोंमें परस्पर विवाह संबंध हुये थे। कलचुरी राजधानी त्रिपुरी और रत्नपुरीमें आज भी अनेक प्राचीन जैनमूर्तियां और खंडहर विद्यमान हैं। श्री पूज्य ब्र० शीतलप्रसादजीने 'कलचुरी नामका अन्वयार्थ उनके जैनत्वका द्योतक बताया था—उन्होंने बताया था कि कलचुरी नरेश जैन मुनिव्रत धारण करते और कर्मोंको नष्ट करके शरीर बन्धनसे मुक्त होते थे इसलिये वह कलचुरी कहलाते थे। 'कल' का अर्थ 'शरीर' है, जिसे वे चूर मूर (चूरी) कर देते थे। निस्सन्देह कलचुरी वंश जैनधर्मका पोषक रहा था उसके आदि पुरुष सहस्ररश्मि कार्तवीर्यने मुनि होकर कर्मोंको नष्ट करनेका उद्योग किया ही था।

विरुद एवं संवत्—

कलचुरी वंशका अपर नाम हैहयवंश था और उसकी गणना चन्द्रवंशी क्षत्रियोंमें की जाती थी। कलचुरियोंका राज्य चेदिदेश, गुजरातके कुछ भाग और दक्षिणमें भी रहा था। कलचुरी राजा कल-

देवने चन्देल राजासे उनका राज्य और कालिंजरका प्रसिद्ध किला छीन लिया था, इसलिये वह 'कलिंजराधिपति' अथवा कलिंजरपुरवराधीश्वर' कहलाते थे। इनकी दूसरी उपाधि ' त्रिकलिंगाधिपति ' थी। इन्होंने अपना सम्वत् जो ' कलचूरी सम्वत् ' कहलाता था, वि० स० ३०६ आश्विन शुक्ल १ से चलाया था, जो १४ वीं शताब्दिके अन्ततक चलता रहा था।

## कल्याणीके कलचूरी-परमर्दि—

दक्षिणके कलचूरियोंके शिलालेखोंसे पता चलता है कि वे लोग चेदि देशसे उधर गये थे और चेदीके कलचूरियोंके वंशज थे। उन्होंने दक्षिणमें जाकर वहाके प्रतापी राजा पश्चिमी चालुक्योंका आश्रय लिया था। उनमें जोगमके पुत्र पेर्माडि (परमर्दि) एक प्रख्यात राजा थे। शक सं० १०५१ ( ई० स० ११२८ ) में वह पश्चिमी चालुक्य नरेश सोमेश्वर तृतीयके अधीन सामन्त थे[२]। एक शिलालेखमें इनके विरुद इसप्रकार लिखे मिलते हैं " समाधिगत-पंच-महाशब्द-महा-मंडलेश्वरम् कालजरपुरवराधीश्वरम्, स्वर्णवृषभध्वजम्, डमरुग तूर्य-निर्घो-षणम्, कलचूर्य-कुल कमल-मार्तंड, कदनप्रचंडम्, मान-कनकाचलम्, सुभटरआदित्यम्, गज सामंतम्, शरणागतवज्रपंजरम्, प्रतापलंकेश्वरम्, निशङ्कमल्लम्।[३] " इनसे उनका एक बलवान और प्रतापी महामंडले-श्वर सामन्त होना प्रकट है। उनका ध्वज (पताका) स्वर्ण-वृषभ (सोनेका बैल) था और डमरू उनका मुख्य बाजा था। पेर्माडि जिला बीजा-

---

१-माप्रारा०, भा० १ पृ० ३७-३८, २-दक्षिण०, पृ० १६१ व माप्रारा०, १६०,

पुरके निकट तर्दवाडी नामक प्रदेश पर शासन करते थे। उनके पुत्रका नाम बिज्जलदेव था।

**बिज्जलदेव—**

बिज्जलदेव अपने पिताकी भांति प्रारम्भमें चालुक्य नरेश जगदेकमल्ल द्वितीयके सामन्त रहे और उनके स्वर्गवासी होनेपर उनके छोटे भाई और उत्तराधिकारी तैल (तैलप) तीसरेके सामन्त और सेनापति हुये। सेनापति होनेके कारण बिज्जलका अधिकार बढ़ता गया। उसने तैलपके अन्य सामन्तोंको अपनी ओर मिलाकर उसके कल्याणके राज्य पर ही अधिकार कर लिया। वि० सं० १२१७ से पहलेके लेखोंमें बिज्जलका उल्लेख महामंडलेश्वर रूपमें हुआ है।

यद्यपि इस समय उसने अपना राज्यवर्ष लिखना प्रारम्भ कर दिया था और त्रिभुवनमल्ल भुजबल चक्रवर्ती एवं कलचुर्य चक्रवर्ती विरुद धारण किये थे तथापि वह कहलाता महामंडलेश्वर ही था। किन्तु वि० सं० १२१९ (सन् ११६२) तक वह पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त कर चुका था। कल्याणके चालुक्य राज्यसिंहासन पर अधिकार कर लेनेपर अन्य सब ही सामन्तोंने बिज्जलको अपना अधिपति मान लिया था। बिज्जलका चालुक्य साम्राज्य जितना था जिसमें मैसूर भी सम्मिलित था। स्वाधीन होकर उसने 'समस्त भुवनाश्रय, श्री पृथ्वी वल्लभ महाराजाधिराज, परमेश्वर और परम भट्टारक' विरुद धारण किये थे। जिसके प्रमुख सामन्त निम्नप्रकार थे—

१—भारत २।६१। २—भारत २।६१-६२ [illegible] पृ० १८२ एवं जैन १।४०४। ३—जैन १ ४०५-६।

प्रमुख सामन्तगण—

( १ ) दडनायक श्रीधर ( ११५७–११६२ ) अण्णिगेरेके निकट राज्याधिकारी थे।

( २ ) „ बर्मरस—सगरवशी मुक्षलदेवके पुत्र थे और वनवासी प्रदेश पर (११६१–६२) राज्य करते थे।

( ३ ) „ अम्मण (११६३–६४) महामडलेश्वर सोमके उत्तराधिकारी थे और कदम्ब हंगलके शासनकर्ता थे।

( ४ ) महामंडलेश्वर विजयादित्य—कन्ड़ाडके सिलाहार वंशके शासक बनवाड पर राज्य करते थे।

( ५ ) म० कार्तवीर्य तृतीय—सौन्दतिके रट्टवशके रत्न और राज्याधिकारी (११६५) थे।

( ६ ) महासामन्त कलियम्मरस—जीमूतवाहन कुल और खचर (खेचर) वशके थे।

इन सामन्तोंमें महामंडलेश्वर विजयादित्य, कार्तवीर्य तृ०, कलियम्मरस आदि जैन धर्मके संरक्षक और अनुयायी थे[1]।

कलचूरी राजमंत्री रेचमय्य—

बिज्जलदेवके राजकर्मचारी भी प्राय जैनी थे। उनके महाप्रधान सेनाधिपति दडनायक सिद्धप्पय्य हेगडे थे, परन्तु उनसे पहले बिज्जलके महामंत्री वसुधैकबान्धव दडाधिप रेचिमय्य थे। रेचिमय्यके पिताका नाम नारायण और माताका नागाम्बिका था। उन्होंने ही बिज्जलदेवके लिये सप्ताङ्गी राज्यलक्ष्मी प्राप्त की थी और उस वंशके

१-सजैइ० भा० ३ खण्ड ३ देखो।

राज्यमोंको उसे भोगनेका अवसर उन्होंने ही जुटाया था। वह महा प्रचंड दंडनायक थे जिन्हें राजसभा राजनीति, समरस सौभाग्य और शुभ चारित्रमें रस आता था। उनकी चतुराका आश्रय लेकर कलचूर्य राज्य बेल खूब फैली थी।

उनके अधीन बहुतर राजकर्मचारी थे। वह बड़े ही धार्मिक थे—इसीलिये लोग उन्हें 'समुद्रगंभीर और लोकमें एक ही कल्प-द्रुमसे बढ़के' कहते थे। धार्मिकतामें उनका आदर्श अनुपमेय था। कलचूर्य राज्यभरमें उन्हें नागरखण्ड प्रान्त भेंट मिला था जिस पर वह शासन करते थे।

जैन धर्मके वह अनन्य भक्त थे—जिन धर्मकी प्रभावनाके लिये उनका प्रयास अथक था। एक दफा वह राजा बोप्पदेव और शंकर सामन्तके साथ मातुलिके जिनालयमें जिनेन्द्रकी पूजा करने आये। दर्शन-पूजन करके उन्होंने शंकर सामन्त द्वारा निर्मित जिनालय देखा। उस जिनालयको देखकर वह खूब प्रसन्न हुये और उसके ग्राम दानमें दिया। कण्डूरगण तिंत्रिणीक गच्छ और मुनिवंशके आचार्य माधवकीर्ति सिद्धान्तदेवको वह दानपत्र दिया गया था। यहीं महीं रेचरसदण्डाधीशने भारसीकेरे राजधानीमें सातकूट जिनालय निर्मित कराया था। उन्होंने भारसीकेरेके जैनी भाइयोंकी धार्मिक इच्छा और धर्मस्थिरताकी वार्ता सुनी और प्रसन्न होकर उन्होंने सातकूट जिनकी स्थापना वहां की। भगवान्की अष्टप्रकारी पूजा, साधुओं और सेवकोंके निर्वाह और मंदिरके जीर्णोद्धारके लिये उन्होंने महाप्रभुसे इन्दरहाल ग्राम प्राप्त करके रामनंदि सिद्धान्तदेवको भेंट किया।

सन् १२०० ई० में ही रेचय्यने श्रवणबेलगोलमें शान्तिनाथ भगवानकी प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई थी। उपर्युक्त सागरनन्दि सिद्धांतदेव, जो शुभचंद्र सिद्धान्तदेवके शिष्य थे, इस मंदिरके भी व्यवस्थापक थे। उनका सम्बन्ध कोल्हापुरकी मावन्तबस्तीसे भी था। इस प्रकार एक ही आचार्य एकसे अधिक मंदिरोंकी व्यवस्था करते थे। रेचमय्य दंडनायक उपरान्त बल्लालनृपके आधीन रहे थे।[1]

कलचूरि नृपोंसे उन्होंने अपना सम्बन्ध विच्छेद इसलिए किया प्रतीत होता है कि बिज्जलके समयसे ही कलचूरियोंका उत्कर्ष अवनतिमें परिणत हो चला था और जैनधर्मकी प्रभावना करनेका अव सर भी वहां कम था। रेचमय्य सदृश धर्मात्मा महापुरुषके लिये यह असह्य था कि वह अपनी आखों आगे ही धर्मकी अवनति देखते।

## विज्जल जैन धर्म और वीर-शैव—

विजलदेव एक महान् शासक थे। यही नहीं कि उनके सामन्त और राजकर्मचारीगण जैनधर्मके भक्त थे, प्रत्युत वह स्वयं भी श्री जिनेन्द्रदेवके अनन्य उपासक थे। उन्होंने अपने भुजविक्रम, साहस और बुद्धिकौशलसे दक्षिणमें कलचूर्य साम्राज्यकी स्थापना की थी। इसीलिये एक लेखमें कहा गया है कि उन्होंने कलचूरि वंशको शक्ति प्रदान की थी[2]। एक अन्य शिलालेखमें उनकी महिमा दर्शाते हुए लिखा है कि सिंहल नरेश विज्जलदेवके तोश दानको उठाते थे, नेपालके राजा उनके गधी थे, केरलनृप उनका पानदान रखते थे, गुर्जर नरेश उनके शृङ्गार पूरक थे, तुरुष्क उनके सईस थे, लाटराज

१–मैजै०, पृ० १४७–१४८।
२–शिकारपुरका शिलालेख नं० २३६–मैकु०, पृ० ७९

इनके भानजे, पद्मम नरेश बाहक और कलिंगराज धीमान थे[1]।
इस प्रसंगसे उनका महत्त्व स्पष्ट है। यह महाभाग राज्याधिकारी हुये
कि इनके पहलेसे ही दक्षिणमें शैवधर्म उन्नत और बहु प्रचलित हो
रहा था। किन्तु जैन धर्मका यह उत्कर्ष शैवोंको असह्य हुआ। शैवोंने
इस समयसे ही जैन धर्मके विरुद्ध प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया
जब कि बिज्जल महामंडलेश्वर थे।

शैवोंने हठयोगका सहारा लिया और व आश्चर्यकर चमत्कारोंसे
लोगोंको मुग्ध करने लगे। उनमें एकान्त रामय्य नामक व्यक्ति इस
विरोधाग्निको भड़कानेमें मुख्य था। उस समय अबलूर जैन धर्मका
केन्द्र था। रामय्य वहां गया और जैनोंसे कहा कि वह शैव धर्मकी
श्रेष्ठताका प्रमाण अपना शीश शिवजीको भेंट चढ़ा कर देगा।

यदि शैव धर्म सच्चा होगा तो वह जीवित हो जायगा। जैनि
योंने उसके हठयोगको चीन्हा नहीं–उन्होंने उसकी बात मान ली।
रामय्यने सात दिवसमें अपनेको जीवित कर दिखाया–लोग उसके
पक्षमें आ गये। रामय्यने जैनियोंको सताया और उनकी मूर्तियां–
मन्दिर ढाहना प्रारम्भ किया। जैनियोंने महामंडलेश्वर बिज्जलसे शिकायत
की; जिसपर उसने रामय्यको बुला भेजा। रामय्य आया और जैनियोंकी
वक्तव्यताका प्रमाण दिया। बिज्जल यद्यपि जैनधर्म पोषक था परन्तु
उसने राजसिंहासन पर बैठकर न्यायका ख्याल नहीं किया। रामय्यको
जयपत्र देकर उसके सोमनाथके मंदिरको कुछ भेंट देकर उसे विदा
किया। इस मंदिरमें जैनोंसे किये गये अत्याचारोंके चित्र भी बन

---

१–शिकारपुर शिलालेख नं. ११७–पेज २ ८१

हुये हैं।[1] किन्तु जैनधर्म इन अत्याचारोंको सहन करके भी जीवित रहा, यह उसके अहिंसा सिद्धान्तकी विशेषता थी।

जैनधर्मका प्रचार—

बिज्जलदेवके राज्यकालमें जैनधर्म उन्नत रहा-सम्राट् स्वयं धर्म प्रभावनाके लिये अग्रसर रहते थे। उन्होंने स्वय कई जिनमदिर बनवाये थे और अनेक दान दिये थे।[2] उनका अनुकरण उनके सामन्तों और प्रजाके लोगोंने किया था। वि० स० १०८३ में माणिक्य भट्टारकके निमित्तसे कन्नडिगेमें एक जिनमदिर बना था। स० १०८४ में कीर्तिसेट्टिने पोन्नवत्ति, बेल्हुगे और बेण्णेयूरमें श्री पार्श्वदेवके मंदिर बनवाये थे।[3] खोज करनेसे ऐसे और भी उदाहरण मिल सकते हैं। कलचूरियोंके शिलालेखोंमें जिनभगवान्की मूर्ति यक्ष यक्षियों सहित अङ्कित रहती थी।[4]

जैन–शैव–संघर्ष—

किन्तु यह पहले लिखा गया है कि यह जैनोत्कर्ष शैवोंके लिये हृदयशूल बन गया। एकान्त रामय्यने जो साम्प्रदायिक विरोधाग्नि भडकाई थी, उसे बसव नामक व्यक्तिने खूब ही धधकाया। शैव

---

१-मेजै०, पृ० २८१, व जैका०, पृ० ३५-३८।

२-जैही०, पृ० ७२-७३। ' Vijjala, the greatest Kalachuri prince, was a Jain by faith "-Aiyyangar, 551 J, p 113 "Jainism was a popular sect under Bijjala."-Fleet, Dynasties of the Kanarese Districts, p 60

३-जैएं०, ९। ६७-६८। ४-जैका०, पृ० ३५।

उनका वर्णन अपने ढंगसे करते हैं और जैनी अपनी शैलीसे करते हैं। हम संक्षेपमें दोनोंका भाव उपस्थित करते हैं। लिंगायतोंके "बसवपुराण" में लिखा है कि "बिज्जलदेवके प्रधान बलदेव जैन धर्मानुयायी थे। उनका भानजा बसव था। बलदेवने उस भांजेको पाकर अपनी पुत्री गंगादेवी उसे ब्याह दी। बलदेवके स्वर्गवासी होनेपर बसवको उसकी प्रसिद्धि और सद्गुणोंके कारण बिज्जलने अपना प्रधान, सेनापति और कोषाध्यक्ष नियत किया। इस बसवको शिवजीने वर दिया था कि यह वीर शैव (लिंगायत) धर्मका प्रचार करेगा।

बसवके लिये यह अच्छा अवसर था—उसने अपने नये मतका प्रचार करनेके लिये राजकोषका रुपया खूब खर्च किया। यह खबर बिज्जलको मिली जिससे बसवसे बिज्जल अप्रसन्न होगया और उनका आपसमें मनोमालिन्य बढ़ता गया। बिज्जलदेवने हल्लेश और मधुकेय्य नामक दो जंगमोंकी आंखें निकलवा डालीं, क्योंकि इन्होंने अस्पृश्य शूद्र होते हुये सवर्णी कन्यासे विवाह किया था। बसवने जब यह देखा तो वह कल्याणीसे भाग गया परन्तु उसके भेजे हुये जगदेव नामक पुरुषने राजमंदिरमें घुसकर बिज्जलको मार डाला। यह खबर सुनकर बसव कुडलकी संगमेश्वर नामक स्थानको भग गया और वहां शिवमें लय होगया। बसवकी अविवाहिता बहन नागलाम्बिकासे एक बसवका जन्म हुआ। इसने लिंगायत मतकी उन्नति की।"[1] यह वर्णन वस्तुस्थितिके अनुरूप कितना है? यह बताना कठिन है। इतिहास यह नहीं बताता कि बिज्जलके राजमंत्री बलदेव थे। उनके

१—भाप्रारा भा १

दो मंत्रियों ( १ ) सिद्धप्पय्य हेगडे और ( २ ) खेमय्यका पता जरूर चलता है । उधर कुमारी कन्याके पुत्र जन्म एक अनहोनी सी बात है । इसके अतिरिक्त जैन पंडित धरणीधरणेन्द्र ( सन् १६५० ई० ) ने स्वरचित ' विज्जलराज-चरित् ' में इस घटनाका उल्लेख निम्नप्रकार किया है—

विज्जलचरित्रका वर्णन—

" बसवकी बहन पद्मावती अथवा नागम्मा बड़ी रूपवती थी। विज्जलने उसे अपनी रानी बनाकर महलमें रक्खा । इसी निमित्तसे बसव विज्जलका राजमंत्री होगया । उसने अपना धन वीरशैवके मत प्रचारमें लगाया विज्जलको यह सहन नहीं हुआ—उनमें परस्पर द्वेषाग्नि भड़क गई । एक दफा विजजलदेवने कोल्हापुरके शिलाहार राजा पर चढ़ाई की और वहासे लौटते समय मार्गमें उसने अपनी छावनी डाली । एक दिन राजा अपने खेमेमें बैठा था कि एक जङ्गम जैन साधुका वेष धारण करके उपस्थित हुआ और एक आम राजाको भेंट किया । राजाने वह फल सूघा, जिससे उसपर विषका प्रभाव चढ़ गया और उसीसे वह स्वर्गवासी हुआ । किन्तु मरते समय राजाने अपने पुत्र इम्मडि विज्जल ( विज्जल द्वि० ) से कहा था कि यह कार्य बसवका है—अत उसे इस अपराधका दण्ड देना ।

इसपर इम्मडिने बसवको पकड़ने और जङ्गमोंको मारनेकी आज्ञा निकाली । यह खबर पाते ही कुयेंमें गिरकर बसवने आत्महत्या कर ली, परन्तु उसके उत्तराधिकारी चन्नबसवने लिंगायत मतका प्रचार चालू रक्खो ।" इस कथामें विज्जल द्वितीयका उल्लेख इतिहास सिद्ध

१–दक्षिण १० १७१ और भामारा०, १ । ६४ ।

नहीं है। अत यह संभव है कि विज्जलमर यद्यपि विषका प्रभाव हुआ था, तथापि उसकी मृत्यु उससे नहीं हुई। अनुश्रुति है कि वैष्णोंके उपचार करनेसे विज्जल स्वस्थ हो गया था और उसीने बसव एवं उसके हिमायती अनुयायियोंको दण्डित किया था। उसका देहान्त सम्भवतः वि० सं १२२५ में हुआ था।

राजा बलीकथेमें विज्जल चरित—

कवि देवचन्द्र कृत राजा बलीकथे नामक कनड़ी ग्रन्थमें भी श्री विज्जलदेवका चरित लिखा हुआ है। उससे ज्ञात होता है कि "कल्याणपट्टनमें सम्यक्त्व चूड़ामणि विज्जलदेव राज्य करते थे और उनकी माता मरियम्मा जैन धर्मकी अनन्य उपासिका थी। विज्जलदेवकी रानी गुणवती थी और उनके शर्ममंत्रीका नाम सम्बुद्धि था। मंगिरेश निवासी एक जैन ब्राह्मण शैवमतका अनुयायी हो गया जिसका बेटा मारिराज था। मारिराजकी पत्नी माद्रामकी कोखसे बसव और उसकी बहनका जन्म हुआ। बसव शिवभक्त बना और हठयोगके कई चमत्कार उसे सिद्ध हुये।" उपरान्त कथानक वैसी ही कथा दी है, जैसे कि उक्त विज्जलराय चरित में लिखी गई है, और अन्तमें कहा है कि बसव और उसके साथीने कोलनापमें ६००० बसदि (जिनमंदिरों) को विध्वंस करके और शैव धर्मका प्रचार किया।

इन मंदिरोंमें कल्मेश्वरका आनेसेज्जल-बसदि' नामक प्रसिद्ध

१-जैसि, भा ७ पृ ४१।

दो मंत्रियों ( १ ) सिद्धप्पय्य हेगडे और ( २ ) खेमय्यका पता जरूर चलता है । उधर कुमारी कन्याके पुत्र जन्म एक अनहोनी सी बात है । इसके अतिरिक्त जैन पंडित धरणीधरेंन्द्र ( सन् १६५० ई० ) ने स्वरचित 'बिज्जलराज-चरित्' में इस घटनाका उल्लेख निम्नप्रकार किया है—

**विज्जलचरित्रका वर्णन—**

' बसवकी बहन पद्मावती अथवा नागम्मा बड़ी रूपवती थी । विज्जलने उसे अपनी रानी बनाकर महलमें रक्खा । इसी निमित्तसे बसव विज्जलका राजमंत्री होगया । उसने अपना धन वीरशैवके मत प्रचारमें लगाया विज्जलको यह सहन नहीं हुआ—उनमें परस्पर द्वेषाग्नि भड़क गई । एक दफा बिज्जलदेवने कोल्हापुरके शिलाहार राजा पर चढाई की और वहांसे लौटते समय मार्गमें उसने अपनी छावनी डाली । एक दिन राजा अपने खेमेमें बैठा था कि एक जङ्गम जैन साधुका वेष धारण करके उपस्थित हुआ और एक आम राजाको भेंट किया । राजाने वह फल सूंघा, जिससे उसपर विषका प्रभाव चढ गया और उसीसे वह स्वर्गवासी हुआ । किन्तु मरते समय राजाने अपने पुत्र इम्मडि विज्जल ( विज्जल द्वि० ) से कहा था कि यह कार्य बसवका है—अत उसे इस अपराधका दण्ड देना ।

इसपर इम्मडिने बसवको पकड़ने और जङ्गमोंको मारनेकी आज्ञा निकाली । यह खबर पाते ही कुयेंमें गिरकर बसवने आत्महत्या कर ली, परन्तु उसके उत्तराधिकारी चन्नबसवने लिंगायत मतका प्रचार चालू रक्खा ।" इस कथामें बिज्जल द्वितीयका उल्लेख इतिहास सिद्ध

१-दक्षिण इ० १७१ और भाप्रारा०, २ । ६४ ।

धिकारी हुआ। सोमेश्वरके शेष तीनों भाई भी क्रमशः राजसिंहासन पर आरूढ़ हुये थे। सोमेश्वरके विरुद भुजबलमल्ल, समस्तभुवनाश्रय, श्री पृथ्वीवल्लभ, महाराजाधिराज, परमेश्वर और कलचूर्य चक्रवर्ती[1] थे। उनकी रानी सावलदेवी संगीत विद्यामें निपुण थी।

एक समय उसने अनेक देशोंके प्रतिष्ठित पुरुषोंसे भरी हुई राजसभाको अपने उत्तम गानसे प्रसन्न किया था। इसपर प्रसन्न होकर सोमेश्वरने उसे भूमिदान करनेकी आज्ञा दी थी। सोमेश्वरके भाई मुख्य होयसलनृप बल्लालसे हुये थे। सोमेश्वर शैव और जैन, दोनोंका ही रक्षक हुये थे। वि. सं. १२३१ में संभवतः सोमेश्वरकी मृत्यु होगई। उसके पश्चात् संकम (निःशंकमल्ल) (११७५–११८० ई०), आहवमल्ल (११७६–८८ ई०) और सिंघण (११८३ ई०) क्रमशः शासनाधिकारी हुये थे।

इन राजाओंका जीवन अपने विरोधी चालुक्य, यादव और होयसल नरेशोंसे युद्ध करनेमें बीता था। यादवनरेश जैनधर्मके विरोधी थे–उन्होंने जैन मंदिरोंकी भूमि शैव मंदिरोंको देदाली थी जिससे जैन आश्रयहीन होगये थे। चालुक्य तैलप तृतीयका पुत्र सोमेश्वर भी अपने पूर्वजोंका राज्य कलचूरियोंसे वापस छीननेमें समर्थ हुआ था, किन्तु कलचूरियोंका पूर्ण पतन होयसल वीरबल्लाल द्वितीयके हाथोंसे हुआ। उसके पतनमें परस्परका धार्मिक असहिष्णुताका सम्पन्न कलचूरियोंकी आन्तरिक छिन्नभिन्नता थी।

---

१–भापाता पृ ४५। २–भापाता ३।६५। ३–मैकु पृ ८–८१ व मीडिवल जैन पृ १८१

जैन मदिर भी नष्ट किया गया था। इसप्रकार जैन धर्मके ह्रासका बीज कर्णाटक देशमें बो दिया गया था। लिंगायतोंने अपने कौशलसे उसे सफल भी बनाया, क्योंकि चेन्नबसवने अपनी चालाकीसे बिज्जलदेवके उत्ताधिकारी सोमेश्वर रायमुरारीको प्रसन्न कर लिया था। वस्तुत ज्ञात ऐसा होता है कि, इस समय जैन सघमें श्री स्वामी समन्तभद्र सदृश दिग्गजवादी और महान् योगीका अभाव था। लिंगायतोंके हठयोग सम्बन्धी मायाजालका भंडा फोडनेवाला और राजदरबारोंमें जैन धर्मका महत्व स्थापन करनेवाला कोई भी दिग्गज जैनवादी आगे न आया, यद्यपि उस समय प्राय प्रत्येक जैन मदिरमें जैन साधु विद्यमान थे और उनमें ज्ञानशालायें भी थीं। किन्तु मालूम ऐसा होता है कि यह साधुगण मंदिरोंके आन्तरिक प्रबन्धमें ऐसे सलग्न हुये कि उनमें शिथिलता आ गई, और उच्च कोटिके विद्वान् तैयार करनेकी ओरसे वह कुछ समयके लिये बेसुध हो गये। परिणामत जैनधर्मके अनिष्टका सूत्रपात यहांसे गहरी जड पकड गया!

### बिज्जलके उत्तराधिकारी—

बिज्जलदेवकी दो रानियां थीं। रानी गुणवतीकी कोखसे सोमेश्वर (सोविदेव), सकम, आहवमल्ल और सिंहणका जन्म हुआ था। दूसरी रानी एचलदेवी थी, जिनके एक पुत्र वज्रदेव और एक कन्या सिरियादेवी हुई थी। सिरियादेवीका विवाह येलबर्गा प्रदेशके स्वामी सिंहवंशी महामाडलेश्वर चावंड दूसरेके साथ हुआ था। वि० सं० १२२५ में बिज्जलके पश्चात् सोमेश्वर (सोविदेव) रायमुरारी राज्या-

शासन व्यवस्थाकी स्थापनामें जागृत हुई थीं। कच्छपूरियोंकी राजनैतिक व्यवस्था वैधानिक आदर्शके अनुरूप थी। कोई भी राजकर्मचारी मनमानी करनेके लिये स्वाधीन न था। प्रान्तीय शासकोंपर नियंत्रण रखनेके लिये 'कल्पम्' नामक अधिकारी नियुक्त थे। उनकी संख्या पांच थी। वे धर्माध्यक्ष, राजाध्यक्ष न्यायाध्यक्ष आदि कहलाते थे। उनका कर्तव्य था कि वह देखें, कोई राजद्रोही तो नहीं हो रहा है और धर्म, न्याय आदिका पालन ठीक २ किया जाता है। इसी अनुरूप प्रजामें राजभक्तिकी भावना जागृत रक्खी गई थी। कच्छपूरि राज्यका सामान्य मनुष्य भी वीर और साहसी था।

एक शिलालेखसे प्रगट है कि कच्छपूरी नरेशके सामन्त और उनकी प्रजा बहादुरीसे लड़े थे। यहांतक कि नेमिनाथजीका एक प्रेमी पतिसेठीका पुत्र दमयम भी वीरतापूर्वक युद्धमें लड़ा था। उसने शत्रु सैन्यको आगे बढ़ने ही नहीं दिया और बहादुरीसे लड़ते हुये वीर गतिको प्राप्त हुआ। किन्तु कच्छपूरियोंके प्रभु जनक और कुसंस्कारक थे। वह शासक जनता राज्यको रुसे सुरक्षित रखते। उसका आदर्श शिलालेखके निम्न श्लोकमें गर्भित है —

> "जिनेन ध्यायते ध्यानी, मृतवानपि सुरांगना ।
> अनिर्लोभिति शास्त्र च जिन्ता भावे रथे ॥"[२]

---

१—मभु पृ १० ।

२-ASM (1930) P 255

**जैनधर्मका प्रभाव—**

यद्यपि कल्चूरियोंका राज्य अल्पकालीन था, परन्तु था वह महत्वशाली। उनके समयमें ही जैनधर्मके विरोध रूपमें कर्णाटक देशमें, वीरशैव (लिङ्गायत) मतका जन्म हुआ। कहीं २ इसे जैनधर्मकी पराजयमें चित्रण किया जाता है, परन्तु वस्तुतः यह जैन धर्मकी पराजय नहीं थी। निस्सन्देह लिङ्गायतोंके हाथोंसे जैनियोंको त्रास सहने पड़े, परन्तु जैनधर्मने अपनी स्थायी छाप इस नये मत पर लगा दी। यह नया शैवमत जैनधर्मके सदृश बनकर ही आगे आया। लिंगायतोंने जैनोंके अहिंसा, सत्य, शील, अचौर्य और परिग्रह परिमाणव्रतोंको अपनाया था और कहा था कि 'जो कोई तुम्हें गाली दे और मारे, उसके सम्मुख तुम दण्डाकार पड़ जाओ, यदि वीरशैव तुम्हारे शत्रु हैं तो उनसे मित्रताका व्यवहार करो। जो शैवोंको सतायें उन्हें दण्डित करो, किन्तु तुम दूसरोंकी स्त्री और धनकी वाञ्छा मत करो। अपनी इन्द्रिय-वासनाओंको काबूमें रक्खो[१]।'

यह जैनधर्मकी विजय थी कि अन्य मतावलंबी उसके सिद्धांतोंको लेकर आगे बढ़े। जैनधर्मका यह अहिंसक प्रभाव ही उसको जीवित रखनेमें कारणभूत हुआ। जैनियोंने अपने पड़ोसी विधर्मियोंको कभी नहीं सताया, यद्यपि सत्ता उनके हाथमें थी। शक्तिशाली होते हुए भी जैनी विश्वप्रेमके हिमायती रहे।

**स्वाधीन वृत्ति—**

जैनधर्मके प्रभावानुरूप राजा और प्रजामें स्वावलम्बन और

१-लैक० पृ० ३६।

मनोम सन् १००६ से १३४३ ई० तक सफल शासन किया था।

होयसल-जन्मभूमि—

उनके होयसल नामकी उत्पत्ति बड़ी मनोरंजक और जैन-धर्मसे उनके सम्पर्ककी द्योतक है। शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि होयसल नरेशोंकी जन्मभूमि शशकपुर (सोसवूर) थी। आज कल कादमबेलवर्ती मूडगेर जिलेके मुडगेरे तालुकमें अङ्गडि नामक स्थान प्राचीन शशकपुर बताया जाता है।[1] उसकी बस्तियोंमें अङ्गडि जैन-धर्मका एक मुख्य केन्द्र था। यहांपर होयसल कुलदेवता वासंतिका देवीके मंदिरसे भी पुराने जैनमंदिर विद्यमान थे। सन् ९९८ ई० का एक शिलालेखसे अङ्गडिसे उपलब्ध हुआ है जिससे स्पष्ट है कि यहांपर द्राविड (द्रमिड!) संघ कोण्ड कुन्दान्वय और पुस्तकगच्छके जैन गुरु रहा करते थे। मौनी भट्टारकके शिष्य विमलचन्द्र पंडित देवने यहीं समाधिमरण किया था।

उनके शिष्य श्रीमान् हरिवंशेश्वर समकक्ष पश्चिमीय चालुक्य नरेश सत्याश्रय (९९७-१ ९) थे। आज अङ्गडिमें वासन्तिका देवीका मंदिर मौजूद है, परन्तु उसमें देवीकी वह प्राचीन मूर्ति नहीं है जिसकी होयसलनरेश पूजा किया करते थे। यहांपर आज गगन चुम्बी सुन्दर जिनालय भी नहीं है, जो एक समय अङ्गडिके लिये गौरवकी वस्तु थे। उनकी स्मृति दो भग्नावशेषी जिनालय दे रहे हैं। इनमेंसे एक मकर-जिनालय[2] कहलाता था। यह दोनों ही मंदिर

---

[1] मेजु ४। ९-मो० , ११। १-इका ६ भूमिका पृ १३।
४ पृ०

## कल्याणके कलचूरियोंका वंशवृक्ष।

जोगम
|
पेर्माडि ( परमर्दि )
( चालुक्य सोमेश्वर तृ० के करद )
|
बिज्जलदेव ( बिज्जन, निशङ्कमल्ल )
( सन् ११५६—११६७ ई० )
|

| सोमेश्वर रायमुरारी | सकम निशंकमल्ल | आहवमल्ल | सिंघण |
|---|---|---|---|
| (११६७-११७६) | (११७६-११८१) | (११७६-८८) | (११८३) |

---

# होयसल-राजवंश।

( सन् १००६ से १३४२ ई० )

**होयसल-राज्य—**

होयसल राजवंश मूलतः कर्णाटक देशसे सम्बन्धित था। इस राजवंशके नृपगण सोमवंशी यादव क्षत्रिय थे।[2] इन्होंने कलचूरियों, यादवों और चोल नरेशोंसे मुकाबिला किया था। कलचूरियों और चोलोंको परास्त करके यह सारे कर्णाटक और मैसूर प्रदेशपर शासनाधिकारी हुये थे। यह द्वारावतीपुरवराधीश्वर कहलाते थे। इनके पूर्वज जैनधर्मके उपासक थे। संभव है कि वह अपनेको द्वारावती (द्वारिका) के सन्त तीर्थंकर नेमिनाथ और नारायण कृष्णसे सम्बन्धित मानते हों।

---

१—मेजै०, ५८। २—'सोमान्वये यदुर् अभुद् यदुवंश जन्मा—भूपस् सालकिल दिलीप—नल प्रभाव।'—हासनता० शि० नं० ६१।

है कि स्वयं पद्मावती देवीने सिंहका रूप धारण करके सलकी परीक्षा उसमें मुनि सुदत्तकी सहायता की थी।[1]

## राज्य स्थापनाका महत्त्व।

निस्सन्देह वह समय जैनधर्मके ह्रासका था—कर्णाटकवाले अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता खो चुके थे। जैन राष्ट्र गङ्गवाडिका अन्त चोलराजाओंके हाथोंसे हो चुका था। वैष्णव और शैव आचार्योंने अपने हठयोगके चमत्कारोंसे शासक वर्ग पर अधिकार जमा लिया था। ऐसे विकट समयमें जैन मुनिको धर्म प्रभावना और राष्ट्रोद्धारकी धुन आना स्वाभाविक था। राष्ट्री जागृतिके अभावमें धर्मोन्नति होना कठिन था। इसलिये श्री सिंहनन्द्याचार्यके अनुरूप ही श्री सुदत्तमुनिको होयसल राज्यकी स्थापना करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

ईस्वी द्वितीय शताब्दिमें श्री सिंहनन्द्याचार्यजीने गङ्ग साम्राज्यकी जड़ जमा कर जैन धर्मको उन्नत बनाया था—श्री सुदत्तमुनिने दसवीं शताब्दिके अन्त और ग्यारहवींके प्रारम्भमें होयसल सरदारोंको शक्तिशाली बनाकर जैनधर्मके अभ्युदयका साधन जुटाया। यह साधन जैनधर्मके लिये ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्रके लिये महत्वकी वस्तु था। श्री भास्करानन्द सालेतोरने इस विषयमें लिखा है कि होयसल राज्य जैनी बुद्धि कौशलकी दूसरी श्रेष्ठ कृति था। अतः अहिंसा-प्रधान जैनधर्मने विजयनगर साम्राज्यके उत्थान तक दो बार देशके राजनैतिक जीवनमें नवजागृतिका संचार किया। जैनाचार्योंने राज्यकी सहायता पानेके लिये ही इन साम्राज्योंकी स्थापना नहीं की, क्योंकि

१ एम आ ८ ६ ५ ।

दसवीं शताब्दिकी होय्सल कलाके नमूने हैं।[1] सारांशत अङ्गडि शशकपुरके प्राचीन महत्वको आज भी प्रगट कर रहा है।

उत्पत्ति-कथा—

शशकपुर या कहिये अङ्गडिमें एक घटना घटित हुई, जो कर्णाटकके इतिहासमें अमर हो गई है, और जिसने जैन धर्मके महत्वको स्पष्ट कर दिया है। दशवीं शताब्दिके अन्तिमपादमें अङ्गडिमें एक यदुवशी सल नामक सरदार रहते थे। वह एक दिन अपनी कुलदेवी वसन्तिकाके मंदिरमें गये और पूजा करके जैन गुरु सुदतके पास बैठकर धर्मशास्त्र पढने लगे। उस समय एक सिंह बनमेंसे कूदता हुआ आया और जैन गुरुपर झपटा। वह लोकभाषामें चिल्लाये, 'पोयसल !' (मारो, सल !) और अपनी पिच्छिका-दंड उनकी ओर बढा दिया। वीरवर सलने निशङ्क हो उस क्रुद्ध सिंहको मार भगाया और अपने गुरुकी रक्षा की। इस वीरतापूर्ण कार्यके कारण सल 'पोय्सल' नामसे प्रसिद्ध होगये और उनकी सन्तान भी पोय्सल कहलाई। पोय्सल शब्दका अपभ्रंश होय्सल है।

एक शिलालेखसे स्पष्ट है कि उन जैन गुरुने नृपसलके शौर्यकी परीक्षा करनेके लिये यह घटना घटित की थी और उन्हें बहादुर पाकर जैन गुरूने उनको आशीर्वाद दिया। उन्होंने ही 'सिंह' उनका राजचिह्न नियत किया और 'पोय्सल' उनका विजयी नाम घोषित कर दिया। उन जैनगुरूके संसर्गको पाकर सरदार सल और उनके उत्तराधिकारी होय्सल साम्राज्यकी स्थापना करनेमें सफल हुये। एक शिलालेखसे

---

१-मेजै०, पृ० ६१-६२

सहायक हुई उनका सिद्ध मतवादी होना स्वाभाविक है। किन्तु उनका सुदत्त नाम अटपटा सा है और यह भी नहीं मालूम कि वह किस संघ और गच्छके थे ? अङ्गडिमें द्राविडसंघ और कुन्दकुन्दान्वय अवश्य विद्यमान था। संभव है कि सुदत्त मुनि उस संघ और आम्नायके आचार्य हों।

सागरकट्टेके शिलालेखमें लिखा है कि श्री शान्तिमुनिकी वंश-परम्परामें श्री वादिराजदेवके शिष्य श्री वर्द्धमानदेव हुये, जो द्राविड संघ, अरुङ्गलान्वय और नन्दिगणके रत्न थे और जिन्होंने होय्सल राज्य प्रबन्ध (Administration) में प्रमुख भाग लिया था (श्री वर्द्धमान देवरु होय्सल स्वराज्याभिवृद्धि कारणभूतरु) इसके उपरान्त अरसीकेरेके शिलालेखमें (१२२० ई०) और भी स्पष्ट लिखा गया है कि 'सुदत्त स्वामीके पश्चात् वर्द्धमानस्वामी हुये जिनके शिष्य और संघ सबने होय्सलवंश सिंहको परास्त करके लोकमें शासन किया।

होय्सल नरेशोंके शिक्षा और दीक्षा गुरु श्री वर्द्धमानयोगीन्द्र और अन्य मुनीन्द्र हुये। इन उल्लेखोंसे प्रो० सालेतोर सुदत्तमुनि और वर्द्धमानस्वामीको अभिन्न मानते हैं और लिखते हैं कि सुदत्त वर्द्धमानजीने प्रारम्भके तीन होय्सल नरेशोंके राज्य प्रबन्धमें सक्रिय भाग लिया था। किन्तु वह यह नहीं बता सके कि सुदत्तका नाम वर्द्धमान क्यों पड़ा ? उपर्युल्लिखित शिलालेखोंको देखते हुये सुदत्त और वर्द्धमानजीका एक व्यक्ति होना सिद्ध है। अतः हमारे ख्यालसे सुदत्त

---

१-मेजारि (१९२९) पृ १८-१९। २ इम्म भा ८ पृ १४७। ३-मेजै पृ १४-१८।

दक्षिणमें जैनधर्मके केन्द्र पहलेसे विद्यमान थे, और उनमें उच्चकोटिके विद्वान् मौजूद थे, जैसे भारतमें विरले ही हुए हैं। प्रत्युत उन्होंने राज्य स्थापनामें सक्रिय भाग इसलिये लिया कि देशकी राजनैतिक विचारधारा ठीक दिशामें वहे, और राष्ट्रीय जीवन उन्नत बने। भारतके इतिहासमें जैनधर्मका महत्व इसी कारण है। होयसल जैनराज्यसे ही विजयनगरके सम्राटोंको वह संदेश मिला जिसने भारतके इतिहासमें एक नया गौरवपूर्ण अध्याय ही खोल दिया।[1]

## होयसल राज्य संस्थापक श्री सुदत्त मुनि—

पाठक, यह सुदत्त मुनि कौन थे? दंडवती नदीके तटसे मिले शिलालेखमें उनका उल्लेख मात्र 'सुदत्त मुनिप' नामसे हुआ है।[1] अन्य शिलालेखोंमें वह सिद्ध मुनीन्द्र कहे गये हैं[2]। इन शिलालेखोंमें इससे अधिक उनका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। विद्वानोंका मत है कि 'सिद्ध' पद उन गुरुका पूर्ण (Accomplished) मंत्रवादी होना प्रमाणित करता है। जिन गुरुदेवके कार्यमें स्वयं पद्मावतीदेवी

---

1-'The Hoysal'a Kingdom itself was a second supreme creation of Jian wisdom Twice, therefore, had Jainism, which for ages had stood for Ahimsa, caused political regeneration in the land-before the rise of Vijayanagar It was not merely to get the aid of that state the Jaina sages had helped statesmen to found kingdoms, the various Jaina centres of the South possessed some of the most superb intellectual prodigious India had ever produced etc.

—*Mediaeval Jainism, p p 59-60*

१–इका० मा० ८ पृ० ५। २–मैकु० पृ० ९५ (१) व इका० मा० ४ पृ० १२२–१२३ और मा० ५ पृ० ७०।

## होयसल विरुद—

प्रारम्भमें होयसल नरेशोंका पश्चिमीय चालुक्योंसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था। एक प्रकार ये चालुक्योंके आधीन थे—वे उनको कर भी देते थे, यह ज्ञात नहीं। किन्तु होयसलनरेश विष्णुवर्द्धन महान् थे और वह पूर्ण स्वाधीन होगये थे। होयसल नरेशोंके मुख्य विरुद तीन थे, (१) यादवकुलाम्बर—द्युमणि (२) सम्यक्त्वचूडामणि और (३) मलेपरोलगंड। इन विरुदोंसे प्रगट है कि वे यादव क्षत्रियोंमें प्रमुख थे जैनधर्मके अनन्य श्रद्धालु और उपासक थे और मलय (पर्वतीय) सरदारोंमें अग्रणी थे। उनकी 'भुजबल—प्रताप—चक्रवर्ती और 'पश्चिम चक्रवर्ती' उपाधियां उनके शौर्य और प्रतापको प्रगट करती हैं।[1]

## उनकी राजधानियां—

होयसल नरेशोंकी पहली राजधानी शशकपुर (सोसवूर) थी, जिसका उल्लेख पहले किया जाचुका है। उसके पश्चात् वेलापुर (वेलूर) में भी कुछ समयतक राजधानी रही। इस अन्तरालमें सम्राट् विनयादित्य द्वारसमुद्र नामक राजधानीको बसाकर प्रख्यात हुए... चमत्कार स्वरूप मंदिर और राजप्रासाद बनाये गये थे जो आज भी देखते ही बनते हैं। उपरान्त द्वारसमुद्र ही होयसल राजधानी रहीं। मैसूर जिलाके बेलूर ताल्लुकेमें हलेबिड नामक स्थान प्राचीन द्वारा समुद्र है।

---

१—मेडु पृष्ठ ९६।
२—मेडु ९६।

मुनि आचार्यपद पानेपर वर्द्धमानमुनीन्द्र नामसे प्रसिद्ध हुये थे। वह महान् योगी थे और उन्होंने धर्म और देशका महान् हित साधा था।

**होयसल नाड—**

होयसल नरेशोंने कर्णाटक और मैसूर प्रदेश पर शासन किया था, इसलिये वह भूभाग 'होयसल नाड' नामसे प्रसिद्ध हो गया था। होयसल नाड प्रकृतिकी देनसे ही एक सुंदर और मनोरम देश था—उस पर होयसल नरेशोंके समुदार शासन और कलापूर्ण कृतियोंने उसके सौन्दर्यमें चार चाद लगा दिये थे। चामराज नगरके शिलालेख नं० १९७ (१२२३ ई०) में लिखा है कि जम्बूद्वीपके दक्षिणमें भारतवर्ष नामक क्षेत्र है। उसमें एक कुन्तलदेश है और उस कुन्तलदेशमें कामधेनुरूप समृद्धिशाली 'होयसलनाड्' है। उस होयसलनाड्के तालाव अजस्र जलसे पूर्ण थे। वन पुगीफल, कदलीफल, लौंग, तमाल आदि वृक्षोंसे शोभायमान थे और तरह तरहकी सुगंधिसे व्याप्त थे।[१] इसकी समृद्धि अपार थी। एक २ योजनपर नगर विद्यमान थे, जिनमेंसे अधिकांश उद्यानोंसे अलंकृत थे। कमलपुष्पोंसे लहलहाते तालाव भी वहां योजन योजन पर थे और योजन योजनपर यात्रियोंके विश्रामके लिये वाटिकायें बनीं थीं। सचमुच वह देश 'मनोज' के रहनका आवास था।*

१–इका० भा० ५ पृ० २०८।

"सागरद्–अत–अजस्र–जलपूर्ण–तटाक–चयङ्गळि वन।
पुग–महीरुहं–कदलि–तेंगु–लवंग–तमाल–जालदिं॥
बागि फलंगळिंद् एसेव केयू–बोलन् ओप्पुव गंधसालियिंद।
आगलु सीवरं वेसेदु सोप्पुदु होयसल नाडोळ् अर्थियिम्॥"

* इका० भा० ५ पृ० १४४।

चुनौती देते थे। सम्प्रदायमदमें मत्त लोगोंने उनकी पवित्रताको नहीं चीन्हा और उन्हें धराशायी बनाकर ही उन्हें चैन मिली। इस खण्डहरोंमें एक विशालकाय जिनप्रतिमा भी खंड-खंड हुई पड़ी है।[1]

मालूम है धर्मान्धोंने उस पवित्र जिनचैत्यके खण्डखंड कर दिये, मानो अहिंसाके शान्तिके शीतल गुलाबकोंका ही अन्त कर दिया! अबस कालमें नगर वर्तता ही नहीं है। जैन जागृति इस चतुर्गाम प्रतिरोध एकबार फिर अहिंसाकी पुण्यधारा प्रवाहित कर सकती है। वह मनोज्ञ प्रतिमा लगभग पाँच गज अवगाहनाकी होगी—त्याग वैराग्यकी वह प्रतिष्ठा थी—वीतराग शान्तिकी वह आभा थी। उसका एक पग है, इस जगह अब भी उसकी महानता बता रहा है। आवश्यकता है उसके उद्धारकी।

द्वारसमुद्रमें जिस स्थानपर एक समय होयसल नरेशोंके विशाल और मनोरम राजप्रासाद विद्यमान थे आज वहाँ किसानोंके हल चलते हैं। यद्यपि उनकी भव्य आकृति मिट्टीमें मिल गई है परन्तु उनकी महानताका भाव अब भी अवशेष है। सच है बड़े मिटने पर भी अन्योंका उपकार करते हैं यही प्रताप है। इन राजप्रासादोंकी भग्न अस्थियोंको चीरते हुये हल चलते हैं परन्तु वह उफ नहीं करते और अच्छीसी फसल तैयार करके किसानको देते हैं। द्वारसमुद्रके पुरातन अहिंसाके आदर्शको वह अब भी निभा रहे हैं। उनपर अब भी तीन जैन मंदिरोंकी छाया पड़ रही है। यह तीनों जिनमंदिर होयसल कालके बने हुये हैं।

---

१ ... १९१ ) पृ ५२ २—मास्के (१९१ ) पृ ५४।

राजधानी-द्वारासमुद्र (हलेबिड)—

मैसूर रियासतमें बेलूरग्रामसे पूर्वी उत्तरदिशामें जो गाल पक्की सड़कसे जाइये तो हलेबिड मिलता है। यही द्वारसमुद्र है-बड़ीसी द्वार समुद्र झील स्थलको मनोरम बनाती है। जहां दृष्टि डालिये वहीं पुरानी इमारतोंके खडहर दिखते हैं। उन खडहरोंके बीचमें कुछ अखड वैष्णव और जैनमदिर हलेबिडकी पवित्रताका व्यक्त करते हैं। इन मदिरोंके कारण हलेबिड जैनियोंका एक अतिशय तीर्थ होगया है। जैनियोंका ही क्या, हलेबिड प्रत्येक कलाप्रेमी मानवके लिये पवित्र धाम है—वहा सत्य-शिव सुदर की त्रिवेणी धारा अविरल बह रही है। वहाके कलामई मंदिरोंके बीचमें खड़े हुये हमने भारतका प्राचीन गौरव अनुभव किया—यह वह कीर्तिया है जो विश्वके आंगणमें भारतका मस्तक ऊंचा करती हैं। हलेबिडका 'होयसलेश्वर मंदिर' अपनी विशालता और कलाको लिये हुये अनूठा है। उसकी दीवारोंके पत्थर तक्षण कलासे भरे पड़े हैं। धन्य है वह शिल्पी जिसने पाषाणको मोमकी तरह कोमल समझकर उसमें सरसता भर दी—पाषाणकी कठोरता ही हर दी। इस कलाका यह प्रेममई संदेश है—इसीलिये यह आज भी सजीव है। दीवारोंपर पौराणिक दृश्य—रामायण और महाभारतकी घटनायें आकर्षक रीतिसे अङ्कित की गई हैं।

इसके पासहीमें 'केदारेश्वर मदिर भी होयसल कलाका एक नमूना है। इन दोनों वैष्णव मंदिरोंसे थोड़ा सा हटकर जैनमंदिर हैं, जिनकी सरलता और शान्ति देखते ही बनती है। उनके आसपासके खंडहर दर्शकके हृदयको बरबस आहत कर देते हैं। उन खंडहरोंमें

पाठक आगेके पृष्ठोंमें पढ़ेंगे। यहां केवल एक उदाहरण देखिये। मूल-संघ-देशीगणके आचार्य माघनन्दि सिद्धान्तिके शिष्य सकलचन्द्र मुनि थे। इन्होंने जैनधर्म प्रचारके लिए सारे देशमें विहार किया था-ग्राम, खेड़ों और नगरोंमें धर्मप्रभावना करके वह बिकीव नामक ग्राममें सन् १२२९ ई० में समाधिस्थ हो गये। द्वारासमुद्रके भव्य-नागरिकोंने जब यह सुना तो वह गुरुभक्तिसे प्रेरे हुए वहां गये और उनका स्मारक-निषिधिका बना दी।' भव्य भक्तोंने धर्मोत्कर्षके लिये कुछ उठा न रक्खा।

फलतः द्वारासमुद्र जैन गुरुओंके लिये पवित्र धाम हो गया। उनमेंसे अनेक वहां रहे और अनकोंने वहीं समाधिमरण किया। सन् १२७४ ई० में द्वारासमुद्रमें अपूर्व धर्म-घटना घटित हुई।

गुरु बालचंद्र पंडितदेव और श्री अभयचंद्र सिद्धांतदेव-

यहां श्रीमूलसंघ, देशीगण और इंगुलेश्वरबलिके गुरु बालचंद्र पंडितदेव प्रसिद्ध थे। तपधर्म पर इन्होंने वह देशना दी कि लोकमें उनका नाम प्रसिद्ध होगया। सारचतुष्टय आदि सिद्धांतग्रन्थों पर जब इन्होंने टीका टिप्पण किया तो उनके दीक्षागुरु अभयचन्द्र प्रभृति सब उस बड़े चावसे सुना। एकदिन चतुर्विध-संघके समक्ष बालचंद्र पंडितदेव बोले "अमुक दिन मध्याह्नको मैं सन्यास लूंगा। आप सबको धर्मलाभ हो। मुझे आप क्षमा करें।" वह पद्मासनसे बैठ गये—सन्यासकी विधिका इन्होंने पालन किया और पंचपरमेष्ठीका स्मरण करते हुए इन्होंने ऐसी सुंदर रीतिसे समाधिमरण किया कि अन्य सम्प्रदायोंने भी प्रशंसा की। द्वारासमुद्रके भव्यजनोंने पुण्यभावना प्रगट

द्वारासमुद्र जैन केन्द्र—

एक समय द्वारासमुद्रमें तीन नहीं—नौ नहीं, बल्कि कहते हैं ९९९ जिनमदिर मौजूद थे। इन मन्दिरोंमेंसे एकका इतिहास बड़ा मनोरजक और शिक्षाप्रद है। सन ११३३की बात है। होयसल-नरेश विष्णुवर्द्धन बङ्कापुरमें विजयोत्सव मना रहे थे—संदेशवाहकने आकर उन्हें बधाया—वह बोला, 'पृथ्वीपतिका वंशपालक सुपुत्र जन्मा है।' राजा प्रसन्न हुआ। उसने यह भी सुना कि द्वारासमुद्रमें 'पार्श्वनाथ वस्ती' की प्रतिष्ठा होरही है। उसने अपना भाग्य सराहा और 'पार्श्वनाथ' का नाम 'विजय पार्श्वनाथ' रख दिया। सचमुच वह 'विजय पार्श्व' आज भी पूर्ण विजय प्राप्त करनेके लिये दर्शकोंको प्रोत्साहित करनेमें अग्रसर है। वह प्रतिमा बडी मनोज्ञ है।

इस मदिरसे सटा हुआ छोटासा 'आदिनाथ मदिर' है और ठेठ पूर्वीय छोर पर 'शान्तिनाथ मदिर है।[1] यह मदिर जैनसंस्कृतिके दीपस्तम्भ थे—यहांसे ही ज्ञान और दया, विवेक और कर्तव्यका पाठ लोकने पढा था। आज अवशेष तीन मदिरोंकी नीरवता ही उनके पुनीत अतीतको अङ्कशायी बनाये हुए है। उनकी तीन परक सख्या क्या रत्नत्रयधर्मकी बोधक नहीं है? उसीमें तो लोककी मुक्ति निहित है!

जैनगुरु सकलचन्द्र—

द्वारासमुद्र जैनियोंका केन्द्र था उसका वह भाग जहां जैन मदिर स्थित थे 'बस्तिहल्लि' कहलाता था। अनेक जैनाचार्यों और उनके भक्तोंने वहींसे अहिंसा सस्कृतिकी शीतलधारा बहाई थी, यह बात

१–पूर्व० ५५–६०।

श्रावकोंने उनकी और पञ्चपरमेष्ठीकी प्रतिमा निर्मापित करके उनकी कीर्तिको अमर किया।[1] इसप्रकार द्वारा समुद्र जैन संस्कृतिको मूर्तिमान बनानेके लिये एक मुख्य साधन था। जैन गुरु ही नहीं उपासक भी अहिंसामई विमली जीवन बिताते और समाधिमरण द्वारा अपनी ऐहिक जीवनलीला साहसपूर्वक समाप्त करते थे। ऐसे श्रावकोंमें नमि सेठी सल्लेखनीय थे। अपने गुरु मघकीर्तिदेवसे उन्होंने सल्लेखनाव्रत लिया थी। इस प्रकार जैनत्वसे ज्ञात ही होयसलोंकी यह राजधानी थी।[2]

विनयादित्य व नृप काम—

राजधानीका अहिंसक वातावरण होयूसल नरेशोंकी सुनीतिका सुफल था। होयूसल राज्य संस्थापकके जीवन जैनधर्मके उपासक थे, यह विदित ही चुका है। यह मुनि सुदत्त अथवा आचार्य वर्द्धमानका वरदान पाकर परमोत्कर्षको प्राप्त हुये थे। वह वीर तो थे ही पर साथ ही विवेकी भी थे। इसीलिये वह 'सम्यक्त्व चूडामणि' कहलाते थे।[3] जैनधर्मके वह सुदृढ़ स्तंभ थे। उनकी राजनीतिका संचालन आचार्य वर्द्धमानके तत्वावधानमें होता था उनके दो उत्तराधिकारियों—विनयादित्य प्रथम और नृपकामके राज्यसंचालन कार्यमें आचार्य वर्द्धमानका गहरा हाथ था। वर्द्धमान मुनीशके आगे राष्ट्रको अहिंसा-धर्म प्रधान बनानेका प्रश्न दृढ़ रूपमें विचार उपस्थित था।

अतः उनके लिये राज्य संचालक-सूत्रको निर्बन्धित करना आवश्यक था। सलके समान ही विनयादित्य और नृपकाम भी उनके

१–जैन पृ २१९–२११। २–जैने पृ २१ ३–३ का, मा० ५ई ७ ४–जैन पृ ६६–६८

हुई उन्होंने विधिवत् उत्सव मनाया—स्वयं उन गुरुकी मूर्ति प्रतिष्ठित कराई और पंचपरमेष्ठीकी प्रतिमा निर्मापी! इसके ठीक पांच वर्ष पश्चात् सन् १२७९ ई०में फिर ऐसा ही प्रसंग उपस्थित हुआ। इसवार श्री अभयचंद्र सिद्धान्तदेवने समाधिमरण किया था।

यह श्री बालचंद्र पंडितदेवके श्रुतगुरु थे। निस्सन्देह वह महा विद्वान् थे—'प्रमाणद्वयी' के साथ वह छंद, व्याकरण, न्याय सिद्धांत और काव्यशास्त्रके ज्ञाता थे। वह एक महान वादी रूपमें प्रसिद्ध थे। सन् १२७९ ई० की एक रात्रिको उन्होंने अपना अन्तसमय निकट जाना और अन्नजलका त्याग कर दिया। पल्यंकासनसे विधिवत् उन्होंने समाधिमरण किया। एकबार फिर द्वारासमुद्रके भव्य समुदायने उनका पुण्य प्रतीक स्थापित किया।

### श्री रामचंद्र मलधारीदेव—

इस घटनासे बीस वर्षोंके पश्चात् पुनः एक महान् जैनगुरुका स्वर्गवास द्वारासमुद्रमें हुआ। उनका नाम रामचन्द्र मलधारीदेव था, जो बालचंद्र पंडितदेवके ज्येष्ठ शिष्य थे। उनके विषयमें लिखा हुआ है कि "चलते हुये वह अपनी बांहोंको नहीं हिलाते थे—वह मार्ग-शोधन किये विना चलते नहीं थे—कामिनी और कांचनको कभी उन्होंने छुआ नहीं था—कठोर वाणी कभी उनके मुखसे निकली नहीं थी—दिन और रात वह कभी अपने आपको भूले नहीं थे और कभी वह अज्ञानमें पड़े नहीं थे।" उन्होंने अपने शिष्य शुभचंद्र-देवको श्रेयोमार्गका उपदेश दिया था। अपने गुरुके समान ही उन्होंने भी पल्यंकासनसे सन् १३००में समाधिमरण किया। द्वारासमुद्रके

अनन्य भक्त थे। आस्तिक धीके आदर्शको इन राजाओंने खूब निभाया था। फलत: मंगल और दुर्भिक्षके लिये यह बड़ा कम रहते थे। कोङ्गाल्व राजाओंने उनका सामना किया, परन्तु कलिके युद्धमें सन १००६ में वह पूर्ण पराजित होगए।[1] उसके एक वर्ष पश्चात् सन १००७ में धनवासीके कदम्ब राजाने इनकी महत्ता चाही—नृपकाम नक्षण उनकी शरणागतामें पहुंचे।[2] भर्गोवलके लिये इन्होंने वह किया, जो उनके गुरु वर्द्धमानने उन्हें बताया। उनके उत्तराधिकारी विनयादित्य द्वितीय हुए।

विनयादित्य द्वि —

विनयादित्य द्वितीय एक महान् शासक थे। वह यदुवंशरूपी कल्पद्रुमकी एक शाखा थे। वह अपने शुभ विक्रमके कारण 'त्रिभुवनमल्ल पोय्सल' नामसे प्रसिद्ध थे। उनके झंडेपर वे अक्षर 'य–क–स–पो–य्स–ल' लिखे रहते थे, जिसे उन्होंने हमेशा ऊंचा फहराता हुआ रक्खा था। रणभूमिमें उनका शौर्य देखते बनता थे। उनके हजारों शत्रु उनके आते ही तिनकेसे उड़ते हुये नजर आते थे। कोणकणियोंने जब उन्हें आते हुये देखा तो वे चिल्लाते हुये भागे कि 'विनयादित्यकी तलवारसे भगवान् बचावें।'[3] विनयादित्य शूरवीर होनेके साथ ही धर्मवीर और दानवीर भी थे। इसलिए एक शिलालेखमें उन्हें "जीवदयोपेतन" के साथ ही "उग्रवैरीबल निर्घाटम्" ठीक ही कहा है। (Halebid Ins No 12) उनके गुरु जैनाचार्य शातिदेव थे। उनके सदुपदेशको पाकर विनयादित्य सचमुच विनयार्क

१–इका० भा० ५ भूमिका पृ १०   २–इका० भा० ५ (१) भूमिका पृ १०   ३–इका० ५।१८९   ४–इका० भा० ५ पृ० ५६।

अनन्य भक्त थे। अहिंसक वीरके आदर्शको इन राजाओंने खूब निवाहा था। सज्जन संरक्षण और दुष्टनिग्रहके लिये वह सदा तत्पर रहते थे। कोङ्गाल्व राजाओंने उनसे मोरचा लिया, परन्तु मण्णिके युद्धमें सन् १२०६ में वह पूर्ण पराजित होगए।[1] इसके एक वर्ष पश्चात् सन् १२०७ में बनवासीके कदम्ब राजाने इनकी सहायता चाही—नृपकाम तत्क्षण उनकी सहायताको पहुंचे।[2] धर्मोद्योतके लिये उन्होंने वह किया, जो उनके गुरु वर्द्धमानने उन्हें बताया। उनके उत्तराधिकारी विनयादित्य द्वितीय हुए।

### विनयादित्य द्वि—

विनयादित्य द्वितीय एक महान् शासक थे। वह यदुवंशरूपी कल्पद्रुमकी एक शाखा थे। वह अपने भुज विक्रमके कारण 'त्रिभुवनमल्ल' पोयमल नामसे प्रसिद्ध थे। उनके झंडे पर छै अक्षर 'र—क—स—पो—यम—ल' लिखे रहते थे, जिसे उन्होंने हमेशा ऊंचा फहराता हुआ रक्खा था। रणभूमिमें उनका शौर्य देखते बनता था। उनके हजारों शत्रु उनके आते ही तिनकेसे उड़ते हुये नजर आते थे। कोणकणिगोंने जब उन्हें आते हुये देखा तो वे चिल्लाते हुये भागे कि 'विनयादित्यकी तलवारसे भगवान् बचाये।'[3] विनयादित्य शूरवीर होनेके साथ ही धर्मवीर और दानवीर भी थे। इसलिए एक शिलालेखमें उन्हें "जीवदयोपेतन्" के साथ ही "उदग्रवैरीबल निर्घाटम्" ठीक ही कहा है। (Halebid Ins No 12) उनके गुरु जैनाचार्य शांतिदेव थे। उनके सदुपदेशको पाकर विनयादित्य सचमुच विनयार्क

---

१–इका० भा० ५ भूमिका पृ १०   २–इका० भा० ५ (१) भूमिका पृ १०   ३–इका० ५।१८९   ४–इका० भा० ५ पृ० ५६।

किये उन्हें 'चालुक्यका शक्तिशाली दाहिना हाथ' कहा गया है। वह निस्सन्देह एक महान् वीर थे शत्रुओंके लिये वह साक्षात् यम थे। उन्होंने माण्डलिकको परास्त करके धाराको पराश्रयी बनाया था। पोयसेलके उन्होंने छक्के छुड़ाये थे और कलिंगको बरबाद किया थो। इसीलिये वह 'सामन्त प्रदीप' व 'शत्रुओंकिसमिति' कहे गए हैं। (वैशिप्ट पृ ८७) राइस सा० का मत है कि उन्होंने अपने पिताके साथ २ राज्य किया था और वह उनके जीवनमें ही स्वर्गवासी हुए थे। अपने पिताके समान पेरेमन भी जैनधर्मके उपासक थे। उनके गुरु जैनाचार्य गोपनन्दि थे जो मूलसंघाग्रणि चतुर्मुखदेवके शिष्य थे। वह वह मणिदर्पण थे जिसमें साक्षात् वाणीका मुखकमल देदीप्यमान् होता था। (वाणीमुखाम्बुजालोकमाशिप्तु मणिदर्पणैः) उन्होंने वह कार्य किया जो किसीने नहीं किया क्योंकि उन्होंने कुछ समयसे दलमल हुए जैनधर्मका उद्धार किया और उस वही प्रसिद्धि और समृद्धि दिखाई जो गङ्ग राजाओंके समयमें उसे प्राप्त थी।

गोपनंदि एक महान वादी थे जिनके समान अन्य दर्शन दिखते नहीं थे। पेरेमडन इन गुरुको गवनाड और बेलगोल ग्राम भेंट किये जिनकी आमदनीसे वह श्रवणबेलगोलके कटवप्रपर्वतपर स्थित जैन मंदिरोंका जीर्णोद्धार करा सके। इसप्रकार पेरेमड नृपका वह पावन जैनसंघ पूर्ववत् शक्तिशाली हुआ था। शैवों और वैष्णवोंके आक्रमणोंने जैनोंको गोपनंदि सदृश महामना अरहत धर्मके लिये उत्साहित किया।

१—वैइ पृ ११-४ २—मैकु पृ ९८ ३—वधम मा पृ १८१ ४—मैजे पृ ७६—७७ ।

जिन पहाडोंसे पाषाण लिये गये वहां मैदान हो गये और जहांसे चूनेसे भरीं गाडियां निकलीं वहां बडे २ गड्ढे हो गये।[1] निस्सदेह विनयादित्य नरेश जैनधर्म प्रभावनाके लिये अहर्निश उद्योगशील रहते थे। जैनाचार्योंको वह हमेशा इसलिये दान देते थे कि उनके द्वारा जैनमंदिरोंसे अहिंसा संस्कृतिका प्रचार हो।

सन् १०६२ में उन्होंने बेल्वेके मूलसंघी आचार्य अभयचन्द्रको भूमिदान दिया था।[2] मत्तावरको पार्श्वनाथ वस्तीमें सन् १०६९ ई० के शिलालेखसे प्रगट है कि विनयादित्यने मत्तर ग्रामके निवासियोंके उपयोगके लिये एक नहर बनवाई थी। उस नहरको वह देखने गये। उन्होंने देखा कि मत्तर ग्रामके बाहर पहाडी पर जिनमन्दिर है। उसके उन्होंने दर्शन किये। और पूछा कि 'जिनमंदिर ग्राममें क्यों नहीं बनाया?' उत्तरमें माणिक्य सेट्टि बोले, "राजन्! अब आप ही यह कमी पूरी कीजिये। हम गरीब हैं, आपके धनका वारपार नहीं मंदिरको प्रचुर वैभवयुक्त बना दीजिये।" राजा यह सुनकर प्रसन्न हुए और मत्तर ग्राममें जिनमंदिर बनवा दिया और दान भी दिया। मंदिरके पास दानशाला गृह भी बनवा दिये और ऋषिहक्की ग्राम भेंट किया।[3] विनयादित्यकी रानी केलेयब्बरसि सती और मंत्रदेवता तुल्य थी। उनकी कोखसे ऐरेयङ्गका जन्म हुआ था।

**ऐरेयङ्ग व गुरु गोपनन्दि–**

युवराज होनेके पहले ऐरेयङ्ग चालुक्यनृपके सेनापति थे। इसी

---

१–इका० मा० २ पृ०७०–७१, २–मेजै०, पृ० ७५, ३–मेजै० ७५-७६ ४–आसमै० (१९३०) पृ० २१०

रखा थे। इनकी दिग्विजय यात्रामें जब रणभेरी बजती थी तो उसको सुनकर काड़ नरेश अपनी चीख भूल जाते, गुर्जरको भयसे ज्वर घेर लेता, गौल माना शूलसे भेदित हो जाते, पल्लव हतप्रभ होते और चोल अपना चूड़ ( मुकुट ) से हाथ धो बैठते थे।[1]

### बिट्टिदेव ( विष्णुवर्द्धन )—

बल्लालके पश्चात् उनके भाई बिट्टिदेव होयसल राज्यके उत्तराधिकारी हुए जिनका अपर नाम विष्णुवर्द्धन भी था। वह कर्णाटक देशके राजाओंमें प्रमुख थे। उन्होंने न केवल होयसल राज्यका उद्धार किया; बल्कि उन्होंने उसको स्वाधीन और विस्तृत बना दिया। चोल राजाओंके आतंकसे अपने देशको उन्होंने मुक्त किया। वह वस्तुतः एक महान शासक और वीर योद्धा थे। सन् ११०९ ई० के लगभग उन्होंने होयसल राजकी बागडोर अपने शक्तिशाली हाथोंमें सम्हाली थी। श्रवणबेलगोल के शिलालेख नं० ५२ में लिखा है कि सम्राट् विष्णुभूप अति महान् उदार और समस्त लोकके आधार थे—वह नीतिविद् और उपमातीत थे। सकल शास्त्र विद्याके पारगामी गंभीर हृदय और विपुल विजयलक्ष्मीके धाम थे। उनके शौर्यकी प्रसिद्धि असाधारण थी। विजयलक्ष्मी उनकी अनुगामिनी थी। वह उनके शत्रुओंको चेतावनी देती थी कि वे उनके रोषके आगे

---

१—श्र० भा० २—इन्स्क्रि० नं० ५८।

२—अतिमहानुदार उदारं समस्तलोकाधारं
उपमातीतम् श्रीविष्णुभूप सम्राजेयम् ॥ —नीतिविदम् एकोऽ।
सकल शास्त्र विद्या हृदय गम्भीर धाम।
विपुल विजयलक्ष्मीधामो विष्णुदेवः ॥ — श्रवण० नं० ५.

# दक्षिणभारतका मध्यकालीन इतिहास (अंतिम पाद)

### बल्लालदेव प्रथम व गुरू चारुकीर्तिदेव—

ऐरेयङ्गकी रानीका नाम एचलदेवी था। वह जिनेन्द्रभक्तिमें देवतातुल्य थी। उनके गुरु द्रविलगण नन्दिसंघ अरुङ्गलान्वयके आचार्य गुणसेन पण्डित थे।× एचलदेवीके तीन पुत्र हुये, जिनके नाम बल्लाल, विट्टिदेव और उदयादित्य थे। सन् ११०० ई० के लगभग इनमेंसे ज्येष्ठ पुत्र बल्लाल राज्याधिकारी हुये, किंतु उन्होंने थोड़े ही समय राज्य किया। वह 'त्रिभुवनमल्ल बल्लाल पोहरसल' कहलाते थे। वेलूरको उन्होंने अपनी राजधानी बनाया था। सन् ११०३ ई० में उन्होंने एक ही दिन मरियाणे दंडनायककी तीन सुन्दर और सुसंस्कृत कन्याओंके साथ विवाह किया था। बल्लाल प्रथमके गुरु जैनाचार्य चारुकीर्ति मुनि थे, जो उस समयके एक प्रख्यात वादी और सिद्ध मुनि थे। वह आयुर्वेद विद्याके भी पारगामी थे। श्रुतिकीर्तिदेव उनके गुरु थे। एक दफा बल्लाल नृप असाध्य रोगमें ग्रस्त हुये तो चारू-कीर्तिदेवने उन्हें शीघ्र स्वस्थ्य कर दिया। उन्होंने 'सारत्रय' और न्याय शास्त्रको प्रकाशित किया था। संभवत उन्हें औषधि ऋद्धि प्राप्त हुई थी, क्योंकि एक शिलालेखमें कहा गया है कि उनके शरीरकी छुई हुई हवा लोगोंको रोगमुक्त कर देती थी।[३] इन राजगुरुके सम्पर्कमें आकर बल्लालदेवने भी जैन धर्मको प्रभावित किया था। इन्होंने सन् ११०० से सन् ११०६ तक ही राज्य किया था। यह प्रतापी

× इका० ५/२६२ १–मैकु०, पृ० ९८–९९ २–मेजै०, पृ० ७८
३–इका०, भा० २ पृ० ११८

टिक नहीं सकते, इसलिये उनकी शरणमें आजायें।[1] द्वारासमुद्रसे जगदेव सान्तारको मार भगाकर अपने भाई बल्लालदेवके साथ विष्णु-नृपने होयसल ध्वज ऊंचा फहराया और होयसल राजधानीका उद्धार किया था।[2] श्रवणबेलगोलके शिलालेखोंमें वे 'महामण्डलेश्वर, समधिगतपञ्चमहाशब्द, त्रिभुवनमल्ल द्वारावतीपुरवराधीश्वर, यादवकुलाम्बरद्युमणि, सम्यक्त्वचूडामणि, मलपरोलगण्ड, तलकाडु कोङ्ग नङ्गलि कोटतूर, उच्छङ्गि नोलम्बवाडि हानुगल गोण्ड, भुजबलवीरगङ्ग आदि प्रतापसूचक पदवियोंसे विभूषित मिलते हैं।' उन्होंने इतने दुर्जय दुर्ग जीते, इतने नरेशोंको पराजित किया कि जिससे ब्रह्मा भी चकित होजाता है।'[3]

## उनका प्रताप और राज्य—

विष्णुवर्द्धनको अनेक वीर जैन सेनापतियोंकी साहाय्य प्राप्त थी। उनके भुजविक्रम और शौर्यने विष्णुवर्द्धनकी शक्तिको अजेय बना दिया था। नीलगिरि और मालावारको उन्होंने सेनापति पुनीसके सम्पर्कसे जीता था। सन् १११६ में उन्होंने उच्छङ्गिके पाण्ड्य राजापर धावा किया था और शिमोगा—चितल्दुर्ग—सीमापर दुम्मे नामक स्थान पर उसे परास्त किया।[4] पांड्यदुर्ग उच्छङ्गिकी विजय उन्होंने ओडोसाके नरेश चोलगगके पुत्र चामदेवके सहयोगसे की थी, जो मैसूरमें जन्मे थे। अदियम् पल्लव नृसिंहवर्मा, कोङ्गनरेश, कलपाल, अङ्गदेश आदि राजाओंको उन्होंने पराजित किया था। श्रवणबेलगोलके शिलालेखोंमें

---

१–आसमै०, (१९३०) पृ० २१० २–इका० भा० ५ (८१) भू० पृ० १२ ३–जैशिस०, भू०, पृ० ८७–८८ ४–इका० भा ५ पृ० १९०–१९१

टिक नहीं सकते, इसलिये उनकी शरणमें आजायें।'[1] द्वारासमुद्रसे जगदेव सान्तारको मार भगाकर अपने भाई बल्लालदेवके साथ विष्णुभूपने होयसल ध्वज ऊंचा फहराया और होयसल राजधानीका उद्धार किया था।[2] श्रवणबेलगोलके शिलालेखोंमें वे महामण्डलेश्वर, समधिगतपञ्चमहाशब्द, त्रिभुवनमल्ल द्वारावतीपुरवराधीश्वर, यादवकुलाम्बरद्युमणि, सम्यक्त्वचूडामणि, मलपरोलगण्ड, तलकाडु कोङ्ग नङ्गलि कोटटूर, उच्चङ्गि नोलम्बवाडि हानुगल गोण्ड, भुजबलवीरगङ्ग आदि प्रतापसूचक पदवियोंसे विभूषित मिलते हैं।[3] उन्होंने इतने दुर्जय दुर्ग जीते, इतने नरेशोंको पराजित किया कि जिससे ब्रह्मा भी चकित होजाता है।[4]

## उनका प्रताप और राज्य—

विष्णुवर्द्धनको अनेक वीर जैन सेनापतियोंकी साहाय्य प्राप्त थी। उनके भुजविक्रम और शौर्यने विष्णुवर्द्धनकी शक्तिको अजेय बना दिया था। नीलगिरि और मालाबारको उन्होंने सेनापति पुनीसके सम्पर्कसे जीता था। सन् ११६ में उन्होंने उच्छङ्गिके पाण्ड्य राजापर धावा किया था और शिमोगा—चितल्दुर्ग—सीमापर दुम्मे नामक स्थान पर उसे परास्त किया। पांड्यदुर्ग उच्छङ्गिकी विजय उन्होंने ओडीसाके नरेश चोलगगके पुत्र चामदेवके सहयोगसे की थी, जो मैसूरमें जन्मे थे। अदियम् पल्लव नृसिंहवर्मा, कोङ्गनरेश, कलपाल, अङ्गदेश आदि राजाओंको उन्होंने पराजित किया था। श्रवणबेलगोलके शिलालेखोंमें

---

१—आसमै०, (१९३०) पृ० २१० २—इका० भा० ५ (८१) मू० पृ० १२ ३—जैशिसं०, मू०, पृ० ८७—८८ ४—इका० भा ५ पृ० १९०—१९१

१११८ में किया हुआ थे।[1] किन्तु ऐसे भी लेख उपलब्ध हैं जिनसे पता चलता है कि उक्त घटनाके बाद भी विष्णुवर्द्धनकी आस्था जैनधर्ममें निःशेष नहीं हुई थी।

**वैष्णव होनेके बाद भी जिनेन्द्रका भक्त—**

विष्णुनृप रामानुजाचार्यके भक्त हुये अवश्य, परन्तु उन्होंने अपनी पट्टरानी उनसे यह न कहा कि वह वैष्णव होजावे। धर्ममें उनकी स्वतंत्र नीति थी। उनकी रानी शान्तलदेवी पूर्ववत् जैनी रहीं—उनके प्रधानसेनापति गङ्गराज हमेशाकी तरह जैनधर्मके सुदृढ़ प्रभावक रहे। स्वयं सम्राट् विष्णुवर्द्धन भी अपनी जैनभक्तिको छिपा न सके—उनका हृदय जिनपदपद्मोंका चञ्चरीक रहा। इसलिए सन् ११२५ एवं उसके बादके शिलालेखोंमें वे सम्यक्त्वचूड़ामणि ही कहे गये हैं।[2] सचमुच उन्होंने जैनधर्म प्रभावनाके कुछ ऐसे कार्य किये थे जो उनके अतिरिक्त और कोई दूसरा व्यक्ति नहीं कर सकता था। सन् ११२५ ई० में सम्राट्ने स्वयं जैन महावादी श्रीपाल तार्किक चक्रवर्तीको भूमिदान देकर अपनी जैन भक्ति प्रगट की थी। यह आचार्य द्रमिल संघ नन्दिगण अरुङ्गलान्वयके रत्न थे और इन्हें गुरुरूपसे 'वादीभसिंह'—'वादिकोलाहल' और 'तार्किक चक्रवर्ती' उपाधियां प्राप्त थीं। षट्दर्शन-न्यायके लिए वह सम्मुख[3] थे और अकलङ्क मठके वह

१–अर्ली हिस्टरी ऑफ इंडिया पृ ११९ २–मैसूर भूमिका पृ० ८४–९१ ३–श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं ५६ (१३२) व ५९ (७१) देखो। ४–जैन पृ ४१

पट्टरानी शान्तलदेवीके गुरु श्री प्रभाचन्द्रदेव थे।[1] संभव है कि सम्राट् विष्णुवर्द्धन भी उन्हीं गुरुमहाराजके शिष्य हों। जो भी हो, यह निश्चित है कि सम्राट् विष्णुवर्द्धन जैन उपासक थे। उनके समयमें द्वारासमुद्रमें ७०० जिनमंदिर थे।[2] सम्राट् विष्णुका आश्रय पाकर जैनजन समुन्नत जीवन यापन करते थे।

धर्म परिवर्तन–

किन्तु दैव दुर्विपाकसे सम्राट् विष्णुवर्द्धनके जीवनमें एक अघटित घटना घटी। कहते हैं कि विष्णुवर्द्धनकी पुत्री भूतव्याधिसे पीडित थी–जैन पंडितोंने उसे स्वस्थ करनेका असफल उद्योग किया। वैष्णव गुरु रामानुजने यह बात सुनी तो वह आये और राजकुमारीको बाधामुक्त करनेमें सफल हुये। विष्णुनृप यह देखकर प्रसन्न हुये और वैष्णवमतके अनुयायी होगये। उपरान्तके जैन ग्रंथोंमें लिखा है कि रामानुजने अनेक सुंदर वेश्याओंको भेजकर राजाको वरगला दिया था और उसे वैष्णवमतमें दीक्षित करके जैनोंको कोल्हूमें पिलवा दिया था। किन्तु यहां पर 'कोल्हूमें पिलवाने' के अर्थ वाद-रूपी कोल्हूमें पिलवानेके हो सकते हैं। जैनी रामानुजके समक्ष वादमें टिक न सके–विद्वानोंका यह अनुमान है।[3] जो हो, इसमें शक नहीं कि विष्णुनृप वैष्णव होनेके पश्चात् भी जैनोंपर सदय रहे। उनके धर्मपरिवर्तनकी यह घटना राइस सा० के मतानुसार सन् १११६ ई० से पूर्व घटित हुई थी–[4] रामानुज द्वारासमुद्रसे सन्

१–जैशिसं०, पृ० ९९। २–Buchanan Travels II ch XII, p. 80.
३–जैका० पृ० ४०–४१ ४–मैकु० पृ० ९९

किये। अतः यह स्पष्ट है कि सम्राट् विष्णुवर्द्धन वैष्णव होनेपर भी जैन धर्मके सहायक रहे थे।

**आदर्श शासक—**

सम्राट् विष्णुवर्द्धन समुदार और प्रजावत्सल शासक थे। उन्होंने अपनी प्रजाको हितकामनासे कई तालाब खुदवाये थे और कोलारपुर, वेलुगवलि आदि ग्राम बसाये थे। सन् ११२१ ई० में जब यह कावेरी तटपर थे तब उन्होंने सुना था कि वेल्लगवि नामक स्थानमें उनके छोटे भाई उदयादित्यका स्वर्गवास होगया है। अपने राज्यके विभिन्न स्थानोंमें रहनेके उनके उल्लेख मिलते हैं। सन् ११२८ में वह यादवपुरमें थे और सन् ११३७ में वह बंकापुर और तलकाडमें विद्यमान थे।[४] इससे अनुमानित है कि विष्णुवर्द्धनको देशाटनसे प्रेम था। यह भी संभव है कि राज्यकी सुव्यवस्थाके लिये वह भिन्न २ समयोंमें भिन्न२ स्थानोंपर रहे थे। अन्तमें सन् ११४१ ई में वह बंकापुर पहुंचे और वहीं ही स्वर्गवासी हुये। उनका शव द्वारसमुद्र ले जाया गया था वहां दाहसंस्कार किया गया। वह स्वयं साहित्यमें विद्याधर तुल्य थे, कवियोंके लिये साक्षात् कामधेनु थे कलियुगके पार्थ थे और अश्वविद्यामें वत्सराज ही थे।[५]

**धर्मपरिवर्तनका प्रभाव—**

सम्राट् विष्णुवर्द्धनके धर्मपरिवर्तनका प्रभाव जैनधर्म और अन्य

---

१–इका भा ५ पृ ८१ व मेडी पृ ८ २ इका भा ५ (१) पृ पृ १९–११ ३–एकम पि नं १ २ ४–मेडी पृ ११. ५–इका भा २ पृ ७

परम भक्त थे। विष्णु नरेशने उनकी विनयकी और शल्यनामक स्थानपर जैन आवास और मंदिर बनवाकर उसके जीर्णोद्धार और ऋषियोंको दानके लिये शल्य ग्राम प्रदान किया। श्रीपालदेवने गद्य-पद्य मय रचनायें रची थीं और चोल नरेश एवं अन्य राजाओंके दरबारोंमें परवादियोंको परास्त किया था। निस्सन्देह वह एक महान् योगी थे।[1] × इस घटनासे पहले सन् ११२० में जब उनके सेनापति विनयादित्यने 'होय्सल जिनालय' बनवाया तो उसके लिये भी विष्णुभूपन मूलसंघ, देशीगण, पुस्तकगच्छ, कोण्डकुन्दान्वयी आचार्य मेघचन्द्र त्रैविद्यदेवके शिष्य प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेवको दान दिया था। बेलूरके शिलालेखसे प्रगट है कि सन् ११२९ ई० में सम्राट् विष्णुवर्द्धनने मल्लिजिनालयके लिये दान दिया था।[2] सम्राट्के इन कृत्योंसे उनकी श्रद्धा जैन धर्ममें रही स्पष्ट होती है। बल्कि बस्तिहल्लीसे उपलब्ध पार्श्वनाथ वस्तीके शिलालेखसे तो उनका अन्त समय तक भक्तिवत्सल भव्य श्रावक होना प्रमाणित है। यह शिलालेख सन् ११३३ ई० का है और इसमें उनके एक सेनापति द्वारा राजधानी द्वारा समुद्रमें जिनालय बनवानेका उल्लेख है। इसमें लिखा है कि सम्राट्ने अपने पुत्रका नाम विजयपार्श्व देव भगवान्की अपेक्षा विजय नरसिंहदेव रक्खा और जिनालयके लिये जावगल नामक ग्राम भेंट

१-इका०, भा० ५ (चन्नरायपट्टन शि० नं० १४९), पृ० १९०-१९१ व मेजै० पृ० १९ × इका० भा० ६ (Kd 69) २-इका०, भा० ५ (हस्सन शि० नं० ११२) पृ० ३२ ३-आसमै. १९११) पृ० ४३

किये। अतः यह स्पष्ट है कि सम्राट् विष्णुवर्द्धन वैष्णव होनेपर भी जैन धर्मके सहायक रहे थे।

**आदर्श शासक—**

सम्राट् विष्णुवर्द्धन चतुर और प्रजावत्सल शासक थे। उन्होंने अपनी प्रजाकी हितकामनासे कई तालाब खुदवाये थे और कोप्पापुर विष्णुवर्द्धनपुर आदि ग्राम बसाये थे। सन् ११२३ ई० में जब वह कावेरी तटपर थे तब उन्होंने सुना था कि बेलगोलि नामक स्थानमें उनके छोटे भाई उदयादित्यका स्वर्गवास होगया है।[1] आसन राज्यके विभिन्न स्थानोंमें उनके रहनेके उल्लेख मिलते हैं। सन् ११२८ में वह बंकापुरमें थे और सन् ११२७ में वह बेलापुर और तलकाडमें विद्यमान थे।[2] इससे अनुमानित है कि विष्णुवर्द्धनको देशाटनसे प्रेम था। यह भी संभव है कि राज्यकी सुव्यवस्थाके लिये वह भिन्न२ समयोंपर भिन्न२ स्थानोंपर रहे थे। अन्तमें सन् ११४१ ई० में वह बंकापुर पहुंचे और वहां ही स्वर्गवासी हुये। उनका शव शिवगंगा ले जाया गया था जहां दाहसंस्कार किया गया। वह स्वयं साहित्यमें विद्याधर तुल्य थे, कवियोंके लिये साक्षात् कामधेनु थे, कलियुगके पार्थ थे और धर्मविचारमें बलभद्र ही थे।

**धर्मपरिवर्तनका प्रभाव—**

सम्राट् विष्णुवर्द्धनके धर्मपरिवर्तनका प्रभाव जैनधर्म और अन्य

---

१–इका भा ५ पृ ८१ व मेडि पृ ८ २–इका भा ५ (१) पृ पृ १२-११ ३–इका वि नं ११ ४–मेडि पृ ११. ५–इका भा ५ पृ ०

धर्मोंके लिये एक समान था। यद्यपि वह अन्त तक जैनधर्मकी श्रद्धा और भक्तिको अपने हृदयमें अक्षुण्ण बनाये रहे, परन्तु वैष्णव मंदिरोंमें पुरुषोत्तम प्रभुके आगे नृत्य करनेमें वह अपनेको भूल जाते थे। इसके पूर्व जहा जैनधर्मका ही एकछत्र शासनाधिकार उनके दरबारमें था। वहा उसका प्रतिपक्षी वैष्णवधर्म भी समकक्षमें आ विराजा था। फलत जो होयसल शासन जैनोत्कर्षके लिये जैनाचार्यने स्थापा था, यद्यपि होयसल नरेश उसके ( जैनके ) विरोधी तो न हुये, परन्तु होयसल राज्य अब 'जैन राज्य' न रहा। आगेके होयसल नरेशोंने वैष्णव और जैन दोनों मतोंका आदर किया। कालान्तरमें जैन धर्मके लिए यह एक अनिष्ट प्रमाणित हुआ।

**महारानी शान्तलदेवी—**

सम्राट् विष्णुवर्द्धनकी महारानीका नाम सान्तलदेवी था। वह पेरगडे मारसिंगय्य और माचिकब्बेकी ज्येष्ठ कन्या थीं। यद्यपि सान्तलदेवीके पिता कट्टर शैव थे, परन्तु उनपर उनकी माताका ही प्रभाव पड़ा था जो भक्तिवत्सला जैन रमणी थी। सान्तलदेवीके छोटे भाईका नाम दुद्द महादेव था और उनके मामा पेर्गडे सिंगिमय्य थे। वह रूप-सौन्दर्य, कला विज्ञान और धर्म-दानमें अद्वितीय थी।[१] श्रवणवेलगोलके एक शिलालेखमें लिखा है कि सान्तलदेवीके केशपाश चचल भ्रमरसे थे और उनका मुख चन्द्रमा तुल्य था। इसलिये वह साक्षात् रति ही थीं। वह सद्गुणोंकी आगार और सौभाग्यलक्ष्मीका भंडार थीं। उनकी तुलना केवल सरस्वती, पार्वती और लक्ष्मी ही

१-मैजै०, पृ० १६५

कर सकती थीं।[1] इसलिए एक अन्य शिलालेखमें लिखा है कि शान्तलदेवी विष्णु नृपके मन और नयनोंको प्रिय थीं। वह अभिनव रुक्मिणीदेवी ही थीं, जिनके हृदयसे सदा पति-हितजन्य सत्यभाव आलोकित रहता था। विवेकमें वह एक बृहस्पति थीं। वाक्चातुर्यमें वह निष्णात थीं इसीलिए वह 'प्रत्युत्पन्न वाचस्पति' कही गई हैं। मुनिजनकी विनयभक्ति करनेमें वह पूर्ण विनीत थीं। अपने पति-व्रतके प्रभावसे साक्षात् सीता ही कहलाती थीं। वह इतनी उदार और दानशील थीं कि लोग उन्हें 'सवति गन्धवारण चिन्तामणि' कहते थे।

जैन धर्ममें उनका श्रद्धान अटूट था इसीलिये वह 'सम्यक्त्व-चूड़ामणि' कही गई हैं। अपने रूप सौन्दर्यके कारण वह साक्षात् मनोजराज विजयपताका थीं। अपने कुलको अभ्युदय करनेके लिये दीपक थीं। गीत-वाद्य नृत्यमें सूत्रधार ही थीं। जिन समय (मत) की समुद्धित प्राकार ही थीं। निरन्तर आहार-अभय-भैषज्य और शास्त्रदान देनेमें उनका विनोद था। उच्छृंखल सौतोंके लिये मत्त हाथी भी उनकी एक उपाधि थी। इस उपाधिके कारण ही श्रवणबेल्गोलमें बनवाये गये उनके एक मंदिरका नाम 'सवतिगन्ध-वारणबसति' पड़ा था। इस मंदिरमें उन्होंने शान्तिनाथ भगवान्‌की प्रतिमा स्थापी थी जिसके बारे पोठपर लिखा है[2] कि शान्तलदेवी प्रभाचन्द्र मुनीन्द्रके चरणकमलोंमें मधुपा ही होरही थीं; उनके रूप

1-इका ... २ (१४३) पृ० ७ २-जैशिसं पृ० १२०.
३-जैशिसं पृ० १४७

सौभाग्यका वर्णन करनेके लिए कोई भी कवि समर्थ न था, यथा—

" उक्तौ वक्तृगुण दृशोस्तरलता सद्विभ्रमं भ्रूयुग ।
काठिन्य कुचयोर्नितम्ब-फलके वत्सेऽतिमात्रकमम ॥
दोषानेव गुणी करोषि सुभगे सौभाग्य-भाग्यं तव ।
व्यक्त शान्तलदेवि वक्तुमवनौ शक्नोति को वा कवि ॥

गुण वर्णन—

हस्सनतालुकसे प्राप्त शिलालेख न० ११६ (सन् ११२३)में उनके विषयमें लिखा है कि नृप शिखामणि साहसगग पोरसल भुजबलवीरगग श्री विष्णुवर्द्धनकी श्रीमत् पिरिय अरसि (प्रधान रानी) पट्टमहादेवी शान्तलदेवी थी, जो पतिभक्तिमें देवकी और द्वितीय लक्ष्मी थी। अगण्य लावण्य सम्पन्नरूप कल्पवल्लरी वह सगीत विद्यामें सरस्वती थी। नागराजनन्दिनी वह साक्षात् भूमिदेवी, पुण्यदेवी, वाग्देवी और मत्रदेवी थीं। उनका राज्याभिषेक हुआ था और वह सम्राट् विष्णुको राज्य व्यवस्थामें सहयोग प्रदान करती थीं। इसीलिये वह 'नीतिविस्तारिश्री' कही गई है।[1] एक अन्य शिलालेखमें स्पष्ट लिखा है कि देव (राजा), पट्टमहादेवी शान्तल और पंचप्रधान मिलकर होयसल राज्यका सर्वप्रधान न्यायालय सगठित करते थे, जिसके द्वारा शासन सम्बधी महत्वपूर्ण प्रश्नोंका निर्णय किया जाता था। अत शासन सूत्र संचालनमें शान्तलदेवी नूरजहांसे भी एक कदम आगे बढी हुई थी, क्योंकि उनको वह अधिकार वैधानिक रूपमें प्राप्त था।

१—इका०, भा० ५ हस्सन न० ११६　२—इका०, भा० ५ भूमिका पृ० १३, (CN 260 b)

**जैनधर्मकी अनन्य उपासिका—**

शान्तलदेवी जैनधर्मकी प्रभावना करनेके लिये हमेशा उत्साह भावनाको लिए रहती थी। उनके गुरु प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव थे; जिनसे उन्होंने धर्मका तात्विक रूप समझा था। मुनियोंको दान देने और जिनेन्द्रकी अर्चा (पूजा) करनेमें उनका मन लगा रहता था। जैन कथा श्रवण और मननमें उनको बहुत रस आता था। उन्होंने जैनोत्कर्षके लिए अनेक ठोस कार्य किये थे। सन् ११२१ में उन्होंने श्रवणबेल्गोलमें 'सवतिगंधवारण' नामक मंदिर निर्माण और उसमें शान्ति जिनेन्द्रकी प्रतिमा पधराई। मंदिरकी व्यवस्थाके लिये मोट्टेनविले नामक ग्राम भी भेंट किया। राजाकी आज्ञासे उस ग्राममें जैन समुद्रस पासकी भूमि भी भेंट दीगई थी। अपने छोटे भाई दुद्द महादेवके साथ उन्होंने वीर कोङ्गल्व–जिनालय के लिये कणकट्टि नामक ग्राम दान दिया था। शान्तिग्राममें भी जैनोत्कर्षके लिए स्मरणीय कार्य किया था। श्रवणबेल्गोलमें सवतिगंधवारण-वसदि के लिये शान्तलदेवीने विष्णुसमुद्र नामक तालाब और एक उपवन भी बनवाया था। सारांश उन्होंने एक आदर्श श्रावकका जीवन बिताया था।

**समाधिमरण—**

शान्तलदेवीने जब देखा कि उनका शरीर शिथिल होगया है, अतएव देहावसान निकट है, तो उन्होंने सल्लेखनाव्रत धारण करलिया। श्रवणबेल्गोलसे उत्तर पश्चिममें तीस मील दूर शिवगंग नामक स्थानपर

---

१–जैके पृ ११६ २–वही पृ २ ९ ९

गई और वहां धर्मभावना और एकांतवासमें जीवनकी अंतिम घड़ियां बिताईं। यूं तो शान्तलदेवीका जीवन ही व्रत गुण शील चारित्रमय रहा था–वह जीवनभर पुण्योपार्ज्जनका कारण रहीं, परन्तु अपने अन्त समयमें भी उन्होंने पंडितमरणका व्रत धारण किया। भव्यजनवत्सला शान्तलदेवीने अपने शरीरको जिनगन्धोदकसे पवित्र किया था। पंच-परमेष्ठी भगवान्का नाम जपते हुये चैत्र शुक्ल पञ्चमी सोमवारके दिन शक सं० १०५० में वह शिवगंगे तीर्थस्थानमें स्वर्गवासी हुईं।[1]

शान्तलदेवीकी मां माचिकव्वेका समाधिमरण—

महारानी शान्तलदेवीके स्वर्गवासी होनेपर उनकी मां माचिक-व्वेके लिये जीवित रहना दूभर होगया। वह बेटीके वियोगको सहन न कर सकीं। मां बैठी रहे और उसकी लाडली बेटी उसके देखते२ ढह जाये, माचिकव्वे यह कैसे बरदाश्त करतीं? वह बोलीं, "महा-रानी तो देवगतिको प्राप्त होचुकी हैं। अब मैं क्यों पीछे रह जाऊं?" वह बेलुगोलको गई और सन्यास मांडकर बैठ गई! संसारसे नाता उन्होंने तोड़ दिया। अर्द्धोन्मीलित नेत्रोंसे उन्होंने ध्यान मांडा–पंचपरमेष्ठी भगवान्के नामकी उन्होंने रट लगाई और जिनेन्द्रभगवानकी आराधा। अपने इष्टमित्रों और सम्बन्धियोंसे जिस निर्मलतासे वह विदा हुई और क्षमापना की वह देखनेकी चीज थी। उन्होंने सहर्ष पूरे एक मासका अनशन व्रत लिया और उसे पाला। सब ही भव्यजनोंकी उपस्थितिमें उन्होंने अपने गुरु प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव, वर्द्धमानदेव और रविचन्द्रदेवकी साक्षीसे सन्यास ग्रहण करके पंडितमरण किया

१–जैशिसं०, पृ० १३

था। समाधिमरण सुनके हुये वे स्वर्गवासी हुए। निर्मल जिन श्रद्धाके धारक दण्डनायक नागवर्म और उनकी भार्या चन्दिकव्वेके पुत्र प्रतापी बल्देव दण्डनायक और उनकी भार्या माचिकव्वेसे माचिकव्वेकी उत्पत्ति हुई थी। वे जिनचरणभक्त, गुरुसंयुत और रहन पतिव्रता थीं। शान्तलदेवीके मामा सिंगिमय्यने भी समाधि-मरण किया था। उनके पुत्र बल्लदेवने जब मोरिगेरेमें समाधिमरण किया तब उनकी माता और भगिनीने उनकी स्मारक एक पट्टशाला (वाचनालय[1]) स्थापित की। सिंगि-मय्यका स्मारक उनकी भार्या और भावजने स्थापित कराया थी। इन कार्योंमें दुर्निवार मोहको विजय करनेका वीरभाव स्पष्ट है। पुरुष और स्त्रियाँ वीरभावसे वीर गतिको प्राप्त करनेमें गौरव अनुभव करते थे।

राजकुमारी हरियब्बरसि—

शान्तलदेवी और उनकी माता माचिकव्वेके आदर्श धार्मिक जीवनका प्रभाव तत्कालीन महिला समाजमें कार्यकारी हुआ था। राजवंशकी महिलाओंके उदाहरण इस बातके प्रमाण हैं कि जिन धर्मकी इस आदर होय्सल वंशमें थी। सम्राट् विष्णुवर्द्धनकी पुत्री राजकुमारी हरियब्बरसि थीं जो कुमार बल्लाल देव (नरसिंह प्रथम) की ज्येष्ठ बहु भगिनी कही गई हैं। यह भी श्रद्धालु जिन-भक्त थीं। विमुसिंहको यह ब्याही थी। उनके गुरु श्री गण्डविमुक्त सिद्धान्तदेव थे। सन् ११२९ में उन्होंने कोण्डनिनाडमें हन्तियुर

१–जैशिसं पृ. ९४–९६ व मेजै पृ. १६६–१६७
२–जैशिसं भूमिका पृ. ९१ ३–मेजै पृ. १६७

गई और वहां धर्मभावना और एकांतवासमें जीवनकी अंतिम घड़ियां बिताईं। यूं तो शान्तलदेवीका जीवन ही व्रत गुण शील चारित्रमय रहा था—वह जीवनभर पुण्योपार्ज्जनका कारण रहीं, परन्तु अपने अन्त समयमें भी उन्होंने पंडितमरणका व्रत धारण किया। भव्यजनवत्सला शान्तलदेवीने अपने शरीरको जिनगन्धोदकसे पवित्र किया था। पंच-परमेष्ठी भगवान्‌का नाम जपते हुये चैत्र शुक्ल पञ्चमी सोमवारके दिन शक सं० १०५० में वह शिवगंगे तीर्थस्थानसे स्वर्गवासी हुईं।[1]

**शान्तलदेवीकी मां माचिकब्बेका समाधिमरण—**

महारानी शान्तलदेवीके स्वर्गवासी होनेपर उनकी मां माचिकब्बेके लिये जीवित रहना दूभर होगया। वह बेटीके वियोगको सहन न कर सकीं। मां बैठी रहे और उसकी लाडली बेटी उसके देखतेर उठ जाये, माचिकब्बे यह कैसे बरदाश्त करतीं? वह बोलीं, "महारानी तो देवगतिको प्राप्त होचुकी हैं। अब मैं क्यों पीछे रह जाऊं?" वह बेल्लगोलको गईं और सन्यास मांडकर बैठ गईं! संसारसे नाता उन्होंने तोड़ दिया। अर्द्धोन्मीलित नेत्रोंसे उन्होंने ध्यान मांडा—पंचपरमेष्ठी भगवान्‌के नामकी उन्होंने रट लगाई और जिनेन्द्रभगवानको आराधा। अपने इष्टमित्रों और सम्बन्धियोंसे जिस निर्मलतासे वह विदा हुईं और क्षमापना की वह देखनेकी चीज थी। उन्होंने सहर्ष पूरे एक मासका अनशन व्रत लिया और उसे पाला। सब ही भव्यजनोंकी उपस्थितिमें उन्होंने अपने गुरु प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव, वर्द्धमानदेव और रविचन्द्रदेवकी साक्षीसे सन्यास ग्रहण करके पंडितमरण किया

१—जैशिसं०, पृ० ९३

किम्मगिरिपर गये और इसके बनवाये हुए चतुर्विंशति जिनालयके दर्शन करके उन्होंने उस मंदिरका नाम 'भव्य चूडामणि' रक्खा, क्योंकि इसकी उपाधि 'सम्यक्त्व चूडामणि' थी। फिर उन्होंने मंदिरके पूजन दान तथा जीर्णोद्धारके लिए सवणेरु नामक ग्रामका दान किया। इसके अतिरिक्त नारसिंहदेवने जैनधर्मके लिये कुछ और किया हो यह ज्ञात नहीं। मालूम ऐसा होता है कि वैष्णव मंदिरोंमें देवदासियोंके नाच गान आदि साधन नारसिंहदेवका जीवन विलासितामें था लिप्त—इसी कारण वह अन्य बातोंकी ओर कम ध्यान देते थे। निस्सन्देह जब तक होय्सल नरेश जैन धर्मके उपासक रहे और वीतराग गुरुओंकी शिक्षाको शिरोधार्य करते रहे, तब तक उनमें नैतिक कमजोरियां घुस न सकीं। सन् ११७३ ई० में चालीस वर्षकी आयुमें नारसिंह स्वर्गवासी हुए। उनकी पट्टरानी ऐचलदेवीकी कोखसे बल्लाल नामका पुत्र जन्मा था। वही उनका उत्तराधिकारी हुआ। यह और रानी ऐचलदेवी नारसिंहके राज्यकालमें ही शासन सूत्रकी बागडोर सँभाले हुए थे।[1] एक शिलालेखमें लिखा है कि युवराज बल्लाल अपने पिताको छोड़कर असे नामक स्थानमें जा रहे थे। वहां उनके गुरु दयापाल संपाल हेमसेन अजितसेन माधवचन्द्र और मलेके अन्य आचार्योंका रक्षा किया जिन्होंने बल्लालदेवके शीश पर आशीर्वादका गंडा बांधा था।[2] संभवतः इसी कारण एक शिलालेखमें

१-जैशिसं० भूमिका पृ० १४-१९ व मेजे० पृ० ८१ २-एका० भा० ५ पृ० १८-१९ ३-एका० भा० ५ पृ० १९ (BI 86)

स्थान पर एक उत्तग जिनालय बनवाया, जिसके गोपुरोंकी शिखिरोंमें तरह तरहकी मणिया जड़ी हुई थीं। इस मन्दिरके जीर्णोद्धार आदिके लिये राजकुमारीने अपने पितासे कहकर एक ग्राम खरीदा और अपने गुरूदेवको भेंट किया।

नरसिंहदेव प्रथम—

विष्णुवर्द्धनकी दूसरी रानीका नाम लक्ष्मीदेवी था। उनके पुत्र नरसिंह प्रथम हुये। सन् ११४१ ई० म बंकापुरमें विष्णुनृपकी मृत्यु होनेपर नरसिंह राज्याधिकारी हुये। वैसे सन् ११३३ ई० में अपने जन्मदिनसे ही वह अभिषिक्त होगये थे। इन बालक नृपको पाकर भी होयसल राज्यकी श्रीवृद्धि अक्षुण्ण रही, इसका श्रेय विष्णु-वर्द्धनदेवकी निर्मल कीर्तिक साथ होयसलराज्यके सच्चे और ईमानदार जैनी सेनापतियोंको प्राप्त है। इस समयके प्रमुख सेनापति हुल्ल थे। उन्होंने नारसिंहदेवके लिये कई युद्ध लड़े थे। सन् ११४५ में चाहूल्वोंको मारा और ११६१ ई० में बंकापुर पर जिन कदम्बोंने [illegible] किया उनको हराया था। यद्यपि नारसिंहदेव इन विजयोंमें [illegible]य होते थे, परन्तु वह एक योद्धाके बजाय विलासी नृप अधिक थे। उन्होंने ३८४ सुन्दर रमणियोंसे व्याह किया था। सेनापति हुल्लकी धर्मप्रभावनासे प्रभावित होकर ही सम्राट् नारसिंह जैन धर्मकी ओर आकृष्ट हुये थे। एकबार अपनी दिग्विजयके समय नरसिंह नरेश बेल्गोलमें आये, गोम्मटेश्वरकी वंदना करने

---

१-इका०, भा० ६ पृ० ६२-६३ २-मैकु० पृ० १०१-१०२ व मेजै० पृ० ८०.

उनका राज्याभिषेक सन् ११६८ ई० में हुआ लिखा है[1], जब कि उनके पिता जीवित थे।

वीर बल्लालदेव—

किन्तु बल्लालकी सर्वमान्य राज्यारोहण तिथि २२ जुलाई सन् ११७३ ई० है।[2] बल्लाल अपने पितामह विष्णुनृपके समान ही वीर और नीतिकुशल शासक थे। इन्हें प्रसिद्ध जैन गुरु श्रीगोपाल-देवके शिष्य वासुपूज्यजीका पथप्रदर्शन नसीब हुआ था।[3] जैन गुरुसे समुचित शिक्षा और दीक्षा पाकर बल्लालनृप अपने दादाकी तरह ही लोकमें चमके। वह होयसल वीर बल्लाल द्वितीय कहलाते थे। श्रवण-बेलगोलके एक शिलालेखमें उनकी उपाधियां 'तुलुवबलजलधिबडवानल' 'पाण्ड्यकुलदावानल'–'चोलकटकसूरेकार'–'मण्डलिकमुकुटचूडामणि'–'असहायशूरनृपगुणाधार'–'शनिवारसिद्धि'–'सद्धर्मबुद्धि'–'गिरिदुर्ग-मल्ल'–'रिपुहृदयसल्ल'– रणरङ्गभीम'– मलपरोलगण्ड'–'भुजबलवीर गङ्ग प्रताप होयसल' उनके प्रताप और सुनीतिकी सूचना देती हैं। वह दक्षिण महीमण्डलका परिपालन सद्धर्मपूर्वक करते थे।[4]

दिग्विजय—

नृप बल्लालने विष्णुवर्द्धनके अनुरूप होयसल राज्यका विस्तार बढाया था शिलालेखोंमें उनकी दिग्विजयका वर्णन विस्तारसे मिलता है। उस कालमें उच्छङ्गिके दुर्गकी बड़ी प्रसिद्धि थी—लोग उसे अजेय

१–पूर्व० (CN 191) २–मैकु०, पृ० १०२, ३–इका० भा० ५ (आरसीकेरी शि न १) ४–जैशि स० पृ० ४०४

**राजरानियां—**

सम्राट् वीर बल्लालकी एकसे अधिक रानिया थीं और वे भी उनके ही अनुरूप वीराङ्गनायें और नीतिकुशल शासक थीं। उनमें पट्टरानी पद्मलमहादेवी थीं। बल्लालके पुत्र और उत्तराधिकारी प्रताप चक्रवर्ती वीर नरसिंहदेवका जन्म इन्हींकी कोखसे हुआ था, जिनकी एक बहन सोवलदेवी भी थी।[1] एक लेखमें प्रधान रानी चोल महादेवी कही गई हैं, जो कमवाल प्रदेशपर शासन करती थीं।[2] यह सब ही रानिया अलग—अलग प्रान्तोंकी शासनाधिकारी थीं और युद्धमें भी भाग लेती थीं। चोल महादेवीने बेवूरपर आक्रमण किया था। रानी उमादेवी अपने पुत्र कुमार पंडितय्यके सहयोगसे शासन करती थीं—उनके यह पुत्र उनके राजमंत्री थे।[3] एक अन्य रानी केवलदेवी थीं, जो अभिनव केवलदेवीसे भिन्न थीं।[4] रानी कमलदेवी अपनी वीरताके लिये प्रसिद्ध थीं—उन्होंने विद्रोही पहाड़ी सरदारोंके कुलोंको जड़मूलसे नष्ट कर दिया था। उनके पिता मोखरि लक्खय्य और माता सोमब्बे थीं, वह संगीत नृत्य वाद्यकलामें निष्णात थीं।[6]

**जैन धर्मोत्कर्ष—**

वीर बल्लालनरेशकी छत्रछायामें होय्सल साम्राज्यकी पुनः समृद्धि हुई, वैसे ही उनके राजत्वमें जिनेन्द्रके स्याद्वाद मतका पुन अभ्युदय हुआ। राजा और प्रजा, दोनोंने मिलकर जैनधर्मको उन्नत बनाया।

---

१–इका० भा० ५ मू० पृ० २०–२२ (BI 115) २-पूर्व (CN 205) ३–AK 40 (1209) ४–BI 115 & 136 ५–CN 229 & AK 62 ६–CH. 257 इका० २/२३३ ७–मेजै०, पृ० ८१

श्रवणबेलगोलके शि० नं० ४९९ में लिखा है कि उन्होंने कलिंग नरेशका मस्तक विदीर्ण किया, सतुम राज्यको नष्ट किया, मगर राज्यकी नींव खोद डाली, चोलराज्यकी प्रतिष्ठाकी पाण्ड्य वंशकी रक्षा की। उनकी सम्यक्त्व चूड़ामणि उपाधि उनके जैनत्वकी द्योतक है।[1] उनके शासनकालकी एक घटना उनकी स्वाधीनवृत्ति और गुणग्राहकता प्रगट करती है। बात यह हुई कि होयसलराजने उच्चङ्गिपर आक्रमण किया था। पद्मिपुरके कुमारसिंह नामक वणिकने इस कार्यको उचित न समझा। अतः बाण वर्षा करके राजसेनाको आगे बढ़ने न दिया। जब सोमेश्वरने यह बात सुनी तो वह बहुत प्रसन्न हुए और बुलाकर उनके शीशपर सुवर्णका पट्ट बांधा। उनके गुरु माघनन्दि भट्टारक थे। इन्होंने एक अन्य शिष्य सालवाम मन्नकेरेमें शान्तिनाथ मन्दिरका पुनर्निर्माण कराया और उसपर सुवर्ण कलश चढ़ाये एवं जिनार्चन और आहारदानके लिए भूमिदान की। सन् १२५४ ई० में सोमेश्वरने आज्ञा निकाली थी कि श्री जिनेन्द्र विजय तीर्थजिनालयके मुखिये (जनता) का सम्मान सारी प्रजा करे; क्योंकि राज्यका प्रमुख इन्हींको प्राप्त है। (BI 125) इसी सन् १२७१ ई० में नृप सोमेश्वरकी मृत्यु हुई। बिज्जलरानीके पुत्र नरसिंहको उन्होंने होयसल राज्यका अधिकारी नियत कर दिया था इसलिये वह द्वारासमुद्रके राजसिंहासन पर बैठे। किन्तु उनका एक सौतेला भाई था जिसका नाम रामनाथ था और जो देवल महादेवीका

१ जैशि सं० ४९९, २—इका० भाग ५ पृ २१ ३—जैशि सं० पृ ४९९.

११७३ सन् ११२० तक गौरवपूर्ण शासन किया था। उनके ४७ वर्षके उल्लेखनीय शासनकालमें पश्चिमीय चालुक्यों और कल्चूरियोंका अन्त हुआ, सेउण राजा मार भगाये गये और होय्सल दक्षिणमें प्रधान और स्वाधीन शासक बन रहे।[1]

नरसिंह द्वितिय—

उनके पश्चात नरसिंह द्वितीय राजा हुये, जिनका राज्याभिषेक १६ अप्रैल १२२० ई० को हुआ था। शतावधानी ईश्वरचन्द्रने उन्हें अक्षरज्ञान और गणितशास्त्र सिखाया था। अदियम, चेर, पाड्य, मकर, काडव आदि नरेशोंको पराजित करके वह विजयी हुये थे। उन्होंने चोलराजका उद्धार किया था और होय्सल सेनामें हाथियोंकी संख्या बढ़ाई थी।[2] उनकी रानी काललदेवीसे उनके पुत्र और उत्तराधिकारी सोवीदेव (सोमेश्वर) का जन्म हुआ था। श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं० ८१ में उनकी उपाधियां 'समस्तभुवनाश्रय' श्रीपृथ्वीवल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर, सर्वज्ञचूडामणि, मगरराज्यनिर्मूलन, चोलराज्य प्रतिष्ठाचार्य और श्रीमत्प्रताप चक्रवर्ती होय्सल लिखी हैं जो उनके प्रतापको व्यक्त करती है। इसी लेखमें लिखा है कि उनके राज्यकालमें पदुमसेट्टिके पुत्र और अध्यात्मि बालचन्द्रदेवके शिष्य गोम्मट्टसेट्टिने गोम्मटेश्वरके पूजार्चनके लिये १२ गद्याणका दान दिया था।[3]

सोमेश्वर प्रथम—

सन् १२३३ ई० में सोमेश्वर प्रथम राज्याधिकारी हुये।

---

१—मकु०, पृष्ठ १०२, २—इका०, भाग ५ मू० पृष्ठ २३—२५.
३—जैशिसं०, पृष्ठ १६०,

पुत्र था। उसे तामील प्रान्त और कोलर जिलाका राज प्राप्त हुआ था।[1] इस प्रकार अक्षुण्ण होयसल राज्य दो भागोंमें विभक्त हो गया था। नारसिंह तृतीय और रामनाथ, यह दोनों ही होयसलनरेश जैन धर्मके श्रद्धालु भक्त थे।

रामनाथ—

रामनाथने सन् १२५४ से १२९७ ई० तक राज्य किया। सेनानाथ शान्तने श्री शान्तिनाथके मंदिरका जीर्णोद्धार कराया था। उनकी राजधानी कण्णनूर ( विक्रमपुर ) थी। कोगलीसे उनके दो शिलालेख मिले हैं, जिनसे उनकी जैनधर्ममें श्रद्धा प्रगट होती है। उन्होंने कोगलीके चेन्न पार्श्वनाथ भगवान्‌की पूजा अर्चाके लिये स्वर्ण दान दिया था[2]

नरसिंह तृतीय—

नारसिंहदेव तृतीयका जन्म १२ अगस्त १२४० ई० को हुआ था। अत जिस समय वह राज्याधिकारी हुये उससमय उनकी आयु अधिक नहीं थी। तो भी यह प्रगट है कि सन् १२५४ ई० में वह राजसिंहासनारूढ थे। वह अपने दस्तखत 'मलपरोल गंड' नामसे करते थे। सन् १२७१ ई० में सेऊण राजा महादेव उनसे लड़ने आया, परन्तु वह एक रातमें ही वापस भाग गया। सन् १२७६ ई० में सेउण नरेश रामदेवने अपने सेनापति साल्लुवटिक्कमको द्वारासमुद्र पर भारी हमला करनेके लिये भेजा, किन्तु २५ अप्रैल १२७६ ई० को बेलवाडीके महायुद्धमें नारसिंहदेवने उसे बुरी तरह पराजित

---

१-इका० मा० ५ भूमिका पृ० २६ २-मेजै० पृ० ८६

ये तुरुष्कोंसे लड़ते हुये रण वीरगतिको प्राप्त हुये और उनके साथ होयसल राज्यका भी अन्त हुआ। उनका पुत्र विरूपाक्ष बल्लाल एक सामान्य सरदार होकर रहा। और इसकी सन्तान अभीतक बल्लाल नामसे प्रसिद्ध है।

जैन धर्म—

यद्यपि बल्लालोंके शासनकालमें होयसल राजवंश संकटके कारण आये और मुसलमानोंके तूफानमें वह नष्ट भ्रष्ट होगया परन्तु जैन धर्मोत्कर्षके कार्य इस संकटकालमें भी होते रहे। इन उदाहरणोंसे होयसल राज्यमें जैनधर्मकी कोई गहरी पैठ गई थी, यह स्पष्ट है।

दंडनायक केतेय—

सम्राट् बल्लाल तृतीयके महामात्य सेनापति केतेय दण्डनायक जैन धर्मानुयायी थे। वह महाप्रचंड दण्डनायक, सेनापति और सर्वाधिकारी कहे गये हैं। सन् ११२ ई० में उन्होंने गंगेवहलमें अवस्थित कोल्लापुरकी बस्ती (मंदिर) के लिए दान दिया था। इन सम्राट्के समयमें अधिकांश जनता अनेकान्त मत (जैनधर्म) की अनुयायी थी। पाडुवकि सेट्टि और पारिसेट्टि इत्यादि जिनालय बनवाकर अनन्तनाथ भगवानको प्रतिष्ठापित किया था। जिनालयके लिए एक तालाब आवश्यक था। अरेय मारेय नायकने वह तालाब बनवाया और कम्पालुके भागको सहित दान दिया। जैनगुरु नमिचन्द्र पंडित और बालचन्द्रने भी उसके लिए दान दिया। ये राजगुरु माघकीर्तिके शिष्य थे। मल्लिनाथके शिष्य मुदगगुण्ड, निम्बियगुण्ड और ५२ अन्य

१—मेजु १ १०.

सन् १२८२ ई० के 'नगर जिनालय' के शिलालेखमें माघनन्दि मुनि महामण्डलाचार्य, आचार्यवर्य्य और होयसलराज्य-राजगुरु तथा सैद्धान्त चक्रवर्ती कहे गये हैं, जिससे उनके व्यक्तित्वकी महानता स्पष्ट है। इस प्रकार सम्राट् नारसिंहदेवके शासनकालमें जैनधर्मका अभ्युदय दृष्टव्य है।

### बल्लालदेव तृतीय और पतन—

नरसिंहदेवके उत्तराधिकारी बल्लालदेव तृतीयका राज्याभिषेक ता० १ फरवरी १२९२ ई०को हुआ था। सन् १३०५ में उनका युद्धसे उणनरेशसे हुआ था। इस युद्धके पाच वर्ष बाद सन् १३१० में होयसल राज्यपर मुसलमानोंका आक्रमण हुआ। अलाउद्दीन खिल्जीका सेनापति काफूर द्वारासमुद्र पर चढ आया और बल्लालदेवको अचानक धर दबोचा। ये हिन्दूनरेश आपसमें लड़कर अपनी शक्तिको क्षीण कर चुके थे। वह मुसलमानोंकी अपार सेनाका मुकाबिला क्या करते? बल्लाल तुर्कोंके वदी हुये और द्वारासमुद्र खूब लूटी-खसोटी गई। विजयी मुसलमान सोनेसे लदे हुये वापस दिल्ली गये और साथमें बल्लालके राजकुमारको भी लेते गये, जिसे उन्होंने सन् १३१३ में मुक्त किया था। सन् १३१६ में द्वारासमुद्रका पुनर्निमाण हुआ, किन्तु इसके दस वर्ष बाद सन् १३२६ में मुहम्मद तुगलक फिर आ धमका और उसने द्वारासमुद्रको तहसनहस कर दिया। बल्लाल शृगापटमके पास होण्डानूरमें जा रहे। सन् १३२९ के पश्चात् वह मैसूरमें विरुपक्षपुर अथवा होसदुर्गमें रहे थे। सन् १३४१ में उन्होंने सेतु नामक स्थानपर अपनी किसी विजयका स्मारक जयस्तंभ बनवाया था। ता० ८ सितम्बर १३४२ को बेरिबि नामक स्थानपर

उनका बनाया था। दूसरी बार कर्णाटकीय सैनिक-वृत्तिका गौरव सुरक्षित रक्खा। इसके ही नृपकामके दण्डनायक एचको देखिये। वह कौण्डिन्यगोत्रके द्विज-रत्न थे। उन्हें एचिपय्य अथवा बुधमित्र भी कहते थे। वह द्विजमार और इनकी भार्या माचव्वेके सुपुत्र थे। श्रवणबेल्गोलके शिलालेखोंसे स्पष्ट है कि ऐच लोकमें एक ही सज्जन थे और मनुजरत्न पवित्र चारित्रके धारक थे। कुक्कुट (कुर्ग) के श्री कनकनन्दि आचार्य उनके गुरु थे। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती पोचिकब्बे थी। दोनों ही जिनेन्द्रकी भक्ति और पूजामें आनंद-विभोर रहते थे। पोचिकब्बे सर्वश्रेष्ठ गुणोंसे समलंकृत थीं। यहाँतक कि लोग उनको देखते ही हाथ उठाकर कहते थे—सर्वश्रेष्ठ गुण-सम्पन्नोंने यह महिला रूप धारण किया है। पोचिकब्बेका मन एक मात्र जिनगुण स्मरण और ऋषिमुनियोंकी विनय करनेमें लगा था। उन्होंने सन् ११२ में सल्लेखना व्रत लेकर अपनी ऐहिक जीवन लीला समाप्त की थी। इन्हींके पुत्र विष्णुवर्द्धन नरेशके प्रसिद्ध सेनापति गङ्गराज थे। उनके दो पुत्र और थे। ज्येष्ठ पुत्रका नाम बम्म था। इसके शासनकालमें नृपकामने सुनीतिपूर्ण राज्य किया और उसकी जड़ मजबूत की।

**विष्णुवर्द्धनके जैनी सेनापति—**

सम्राट् विष्णुवर्द्धनके सेनापति अकेले गङ्गराज ही नहीं; बल्कि उनके अतिरिक्त सात सेनापति और थे। वे (१) गङ्गराज, (२) बोप्प (३) पुणीस (४) बलदेव (५) मरियाने, (६) इनके भाई

१-मैसू० पृ ११६।

नागरिकोंने भी उस मंदिरके लिये दान दिया था।[1] सारांश यह कि इस समय जैनोत्कर्षके लिये सर्वसाधारण जनता और जैन गुरु तन-मनसे उद्योगशील थे।

धर्म-सहिष्णुता और जैनधर्म—

होयसल साम्राज्यमें प्रत्येक व्यक्तिको अपनी श्रद्धानुकूल धर्म पालनेकी स्वाधीनता प्राप्त थी यद्यपि प्रारम्भमें ही होयसल राज्य जैनधर्म-प्रधान रहा, परन्तु उसमें धार्मिक असहिष्णुता और साम्प्रदायिक कट्टरताका अभाव रहा। यहांतक समुदारभाव लोगोंमें कार्यकारी था कि एक ही घरमें जैन और शैव—दोनों मतोंके माननेवाले मौजूद थे। दंडनायक चन्द्रमौलि शैव थे परन्तु उनकी पत्नी जैन थीं। स्वयं सम्राट विष्णुवर्द्धन वैष्णव होजानेपर भी जैनधर्मकी श्रद्धाको भुला न सके थे। उनकी रानी जैना ही रही। सारांशतः धार्मिक सौहार्दके इस समुदार वातावरणमें जैनधर्म बराबर फला-फूला यह नहीं कि होयसल राजकर्मचारी और प्रजावर्गके सदस्य जैनधर्मको उन्नत बनानेमें अग्रसर थे। संक्षेपमें हम आगेके पृष्ठोंमें जैनधर्म प्रभावक राजकर्मचारियों, व्यापारियों और महिलाओंका विवरण देना अपना कर्तव्य समझते हैं, जिससे तत्कालीन जैनधर्मकी स्थिति स्पष्ट होती है।

दंडाधिप ऐच और गुरु कनकनन्दि—

होयसल नरेशोंके सेनाधिकारी और राजमंत्री प्रारम्भसे ही जैन धर्मानुयायी वीर योद्धा और राजनीतिज्ञ रहे थे। यह सौभाग्यका विषय था कि इन जैन सेनापतियोंने जहां एक ओर जैनधर्मको

१–मैबे०, पृ० १५३ व १६४

उनके विषयमें लिखा है कि वे निरन्तर मोक्षानुमार्गी जिनधर्म-रक्षक एवं पुरस्त्र थे। निस्सन्देह जो दृढ़व्रत जिनेन्द्रपूजामें अनुलीन हो, उसके लिए इहसुखम भोग भी सुलभ होते हैं। गङ्गराज अर्हद्भक्ति जिनेन्द्रकी अर्चा और जिनधर्ममें लीन रहते थे। वह कर्णाटकमरोरंस, दानश्रेयांस कुन्देन्दु-मन्दाकिनी विशद यशप्रकाश भी कहे गए हैं। उनके द्वारा मत्र विशाल भी विकास हुआ था। जिनदेवके वह दृढ़ श्रद्धानी थे–इसीलिए वह जिन-मुख चन्द्र वाक् चन्द्रिका चकोर – 'चारित्रश्रमणी धर्ममूर्ति'– जिनशासनरक्षा मणि और सम्यक्त्वचूडामणि कहलाते थे। उनकी दर्शनविशुद्धि उत्तरोत्तर वृद्धिगत हुई थी इसी कारण वह विशुद्ध रत्नत्रयाकर भी कहे जाते थे। राज्यमंत्रणा करते हुये भी वह धर्मसम्पादक थे यह उनके लिए गौरवकी बात है। इसीलिए उन्हें ठीक ही मंत्रिमाणिक्य कहा गया है। पद्मावती-देवीलब्धवरप्रसाद विरुद उनकी धर्मनिष्ठाका द्योतक है। उनके 'अप्रतिमवीर्य'– वीरभट भयंकर भट–'प्रोहगई' और 'अप्रतिमवीर' विरुद उनके शौर्य और प्रतापके सूचक हैं।

## गङ्गराजके युद्ध और विजय—

सम्राट् विष्णुवर्द्धनको होयसाल-राज-सिंहासन प्राप्त करानेमें सेनापति गङ्गराजका सहयोग मुख्य कारण था। सम्राट्का राज्यविस्तार भी गङ्गराजके सहयोगका आभारी था। इसीलिये वह विष्णुवर्द्धन राज्याभिषेक-पूर्ण कुंभ और होयसलराज्य-वार्धि संवर्द्धन-सुधाकर कहे गये हैं। होयसलराज्य कार्यमें उनका प्रमुख हाथ था। एक शिलालेखमें अंकित

१ शक्त मा ९ (BL 124) पृ ८१.

भरत, (७) ऐच और (८) विष्णु थे। गङ्गराज और बोप्पने वह सफल दिग्विजय की कि कर्णाटक एक बार दक्षिणमें शक्तिशाली राज्य होगया। विष्णुवर्द्धनके राज्यारोहण समय होयूसल राज्यको चहुओरसे शत्रुदलने घेर लिया था। उत्तरमें उच्छिङ्गिके पाण्ड्य, उत्तर-पश्चिममें सान्तार, और पश्चिम आलुप और कदम्ब अपना र मौका ताक रहे थे। दक्षिणमें कोङ्गल्व, चङ्गाल्व और चोल नरेश होय्सलोंकी वृद्धिमें राकेश बने हुये थे। विष्णुके उपर्युक्त सेनापतियोंके लिये यह समस्या हल करना थी और उन्होंने उसे साहस और सफलतासे सम्पन्न किया। वे सब ही जैनधर्मके उपासक थे।

**महाप्रधान गङ्गराज—**

इन सेनापतियोंमें महाप्रधान दंडाधिप गङ्गराज प्रमुख थे। वह सेनापतित्वके साथ ही राजमंत्रित्वका कर्तव्य पालन करते थे। ऊपर पाठक पढ चुके है कि वह जैनधर्मवत्सल द्विज दम्पति ऐच और पौचिकव्वेके सुपुत्र थे। श्रवणवेल्गोलस्थ चामुण्डराय वस्तीके शिलालेखमें गङ्गराजको महासामन्ताधिपति, महाप्रचण्डदण्डनायक, वैरी भयदायक सम्यक्त्वरत्नाकर, आहार अभय भैषज्य-शास्त्रदानविनोद, भव्यजन हृदय-प्रमोद, विष्णुवर्द्धनभूपाल-होयूसल महाराज राज्याभिषेकपूर्णकुम्भ धर्म्महर्म्योद्धारण-मूल स्तम्भ लिखा है।[1] उनके यह विरुद उनके महान् व्यक्तित्वको प्रगट करते हैं। होयूसलनरेशसे उनकी घनिष्टता, बुधजनोंसे मैत्री और शत्रुओंसे कटुता एवं धर्ममें दृढ श्रद्धा और उनका दानशील भाव इनके पढनेसे स्पष्ट होता है। एक अन्य शिलालेखमें

१—जैशिस०, पृ० ५१.

इसमें पश्चिमीय चालुक्योंके सरदार पाण्ड्य जिसको स्वयं सम्राट् विष्णुवर्द्धनने पूरी तरह हरा दिया था। चालुक्य नरेश विक्रमादित्य छठे त्रिभुवनमल्लको यह बात खटक गई। उसका बदला चुकानेके लिये सन् ११९८ ई० में वह सरदारका होयसलोंपर चढ़ आये और हस्सन जिलेके कण्णेगाल नामक स्थान तक उनकी सेना घुस आई। सम्राट्‌ने उनका मुकाबिला करनेके लिये गङ्गराजको भेजा। उस समय चालुक्य नरेशके साथ उनके बारह सामन्त अपनी सेनाओंके साथ आये थे। किन्तु वीरवर गङ्गराजके लिये उनसे मुकाबिला करना एक खेल था। वह रातमें ही घोड़ेपर सवार हुए और चालुक्य शिविरमें जा धमके। सब ही सामन्तोंसे वह एकसाथ ऐसी बहादुरीसे लड़े कि सबके छक्के छूट गए और वे मैदान छोड़कर भागे। गङ्गराजने चालुक्य शिविरकी रसद और रथ आदि छीनकर विष्णुवर्द्धनको भेंट किए। सम्राट् उनके शौर्यपर मुग्ध हो गये और बोले, "मेरी प्रसन्नताका वार पार नहीं, जो वर चाहो वह मांगो।" इस समय उन्होंने सम्राट्‌से जो वर मांगा वह उनके निस्पृह चारित्र और धर्मनिष्ठाका पता चलता है।

गङ्गराजके धर्मकार्य—

गङ्गराज जानते थे कि वह जो भी सम्राट्से कहेंगे उसे वह स्वीकार करेंगे, परन्तु फिर भी उन्होंने साधारण पुरुषकी भांति कोई चीज नहीं मांगी। उनका हृदय जिनेन्द्र भक्तिमें तल्लीन था। उन्होंने सम्राट्से विनती की कि गङ्गवाडि प्रान्त उनको प्रदान किया

१—जैशि० पृ० ११८—११९

है कि जैसे इन्द्रके लिये वज्रदण्ड, बलरामके लिये हल, विष्णुके लिये चक्र, स्कन्दके लिये त्रिशूल, अर्जुनके लिये गाण्डीव आवश्यक है, उसी-प्रकार विष्णुभूपके राजकाज सचालनमें गङ्गराजका सहयोग आवश्यक है। शिलालेखके अन्तमें लिखा है कि जिन गङ्गराजका यश गङ्गाकी लहरोंके समान निर्मल है, उनका वर्णन करनेमें कौन शक्य हो? उस समय होयसल राज्यकी श्रीवृद्धिके लिये तलकाडसे चोलराजको हटाना आवश्यक था। चोलकी शक्ति भी साधारण नहीं थी। विष्णुने यह महान् कार्य महान् जैन सेनापति गङ्गराजके सुपुर्द किया। गङ्गराजने निशङ्कभावसे वह बीड़ा चबाया! अपनी अजेय अक्षौहिणी लेकर वह चोलोंपर जा धमके, जो पहलेसे तैयार थे। गङ्गराजको तीन शत्रु-सुभटोंसे मोरचा लेना पड़ा। ये तीनों ही चोल शक्तिके स्तम्भ थे। तलकाडमें सामन्त अदियमने मोरचा लिया। उनसे पूर्वमें काञ्चीकी ओर सामन्त दामोदर डटे हुये थे और पश्चिमीय घाट प्रदेशमें सामन्त नरसिंह वर्मा मौजूद थे। गङ्गराजने तीनोंको ही नष्ट भ्रष्ट करके राजेन्द्र चोल द्वितीयको कर्णाटक देशसे बाहर निकाल दिया। यह विजय सन् १११७ ई०में गङ्गराजके नसीब हुई थी। इसमें उनको अपना अपूर्व शौर्य और भुजविक्रम और रणकौशल प्रगट करना पड़ा था। गङ्ग-राजधानी इस युद्धके अन्तमें सर्वथा नष्ट कर दी गई थी। कोङ्गुदेश और चेन्गिरिके राजा भी राजेन्द्र चोलके सहायक थे। गङ्गराजने उनको भी मटियामेट कर दिया था। इस प्रकार दक्षिणकी ओरसे होयसल नरेश निशङ्क हो गये।[1]

---

१–मेजै० पृ० ११८–१२६

धर्मप्रभाव था कि पानी उसके शिविरको छू न सका। उन्हें पद्मावती देवीका सुप्रसन्न वर प्राप्त था—उन्हें कोई बाधा व्यापती कैसे? इस उल्लेखसे गङ्गराजकी धर्मनिष्ठा स्पष्ट व्यक्त है। जिस समय वह एक ओर दुर्दान्त शत्रुओंसे मोरचा ले रहे थे उसी समय दूसरी ओर वह जैनधर्मार्गमें भी अपनी शक्तिको लगा रहे थे। सन् १११७ में जहाँ उन्होंने चोलोंको परास्त किया वहाँ उसी समय उन्होंने अपनी जिनेन्द्रभक्तिकी अभिवृद्धिके लिये इन्दिरा कुलगृह नामक जिनमन्दिर निर्माया था। जिन धर्मको अमर बनानेके लिये ही मानों उन्होंने जिननाथपुर बसाया था।

गङ्गराजके गुरु श्री शुभचन्द्रदेव—

गङ्गराजके धर्मगुरु प्रमुख आचार्य शुभचन्द्रदेव थे। वह मूलसंघ, पुस्तकगच्छ देशीगणके आचार्य कुक्कुटासन मलधारिदेवके शिष्य थे। वे देवपति और गुणान्वयभास्कर कहे गए हैं। वह जैन सिद्धान्तके पारगामी विद्वान् थे। दिगम्बर जैन गुरुओंमें वह सर्वमान्य मुनीश थे। व सिद्धान्तचूडामणि, चारित्रोज्ज्वलदीपिका [illegible] कला और अनेकानुप्रवरकारक कहलाते थे। सन् १११७ में इस गुरुको ही गंगराजने विष्णुवर्द्धनसे परम नामक ग्राम प्राप्त करके भेंट किया था। उन्हींके धर्मोपदेशसे गङ्गराजने द्वारसमुद्रके मंदिरोंमें तीर्थंकरोंकी प्रतिमायें प्रतिष्ठित कराकर विराजमान की थीं।

---

१–मेजै० पृ० १२७–१२८ २–तथा मा० पृ० ४
३–मेजैस्मा० भा० पृष्ठ ६६, ४–मेजै० पृष्ठ १२१

जाय। कहनेकी देर थी कि विष्णुभूपने उनकी प्रार्थना तत्क्षण स्वीकार की। गङ्गराजने उसी समय उस प्रांतको श्री गोम्मटदेवकी पूजाके लिये प्रदान कर दिया उनका यह त्याग महान् था! सब ही उपस्थित भव्यजनों और ऋषियोंने उनके महान् दानको सराहा और कहा, "धन्य है! महान् है यह!" अब गङ्गराज कर्मवीरके साथ ही धर्मवीर बनने पर तुल पड़े। भ० महावीरकी उक्ति 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' को उन्होंने मूर्तिमान् बनाया। गङ्गवाड़िके जितने भी प्राचीन मंदिर थे—जो जीर्ण अथवा नष्ट हो गये थे, गङ्गराजने उन सबका जीर्णोद्धार किया। उनको पूर्ववत् विशाल और जैन संस्कृतिका केन्द्र-स्थान बना दिया। श्रवणबेलगोलमें गोम्मटदेवका परकोट भी उन्होंने बनवाया। सन ११९८ ई० में शिल्पी वर्द्धमानाचारिने उनके इस कार्यकी प्रशंसामें लिखा था कि 'क्या गङ्गराज चामुण्डरायसे शत गुणाधिक भाग्यशाली नहीं है, जो इन्होंने यह महान कार्य किया!' उसीने यह भी लिखा है कि "जहां२ गङ्गराजने कूच किया, शिविर डाला, जहां २ उनकी आंखें टकरा गई और मन बिंध गया, वहां २ उन्होंने मूल्यमई जिनमन्दिर निर्मापित करा दिये। अत सारा देश पूर्ववत् जिनमंदिरोंसे समलंकृत होगया। गङ्गराजकी धर्मश्रद्धा अटल थी। यही शिल्पी उनके विषयमें प्रचलित जनमतका उल्लेख करता है कि जिस प्रकार सती साध्वी जिनभक्ता अत्तिमब्बरसिके धर्मप्रभावसे गोदावरी बहना भूल गई, उसी प्रकार जब गङ्गराजने तलकाड पर आक्रमण किया था, तब यद्यपि कावेरी नदीमें बाढ आई और उसने गङ्गराजके शिविरको चहुंओरसे घेर लिया, परन्तु गङ्गराजका ऐसा

धर्ममें वह सीताके समान और जिनेन्द्र भगवानकी पूजा करनेमें चेलिनीके तुल्य थीं। गङ्गराजके जीवन काल व्यवहारके लिए वह नीति वधू और संग्राममें जय-वधू थीं। इस उल्लेखसे लक्ष्मीदेवीका राजनीतिज्ञ और क्षात्रधर्मपरायण होना सिद्ध है। वह धर्म और कर्म दोनों ही क्षेत्रोंमें अद्वितीय वीराङ्गना थीं। लक्ष्मीदेवीने श्रवणबेल्गोलमें एक जिनमंदिर बनवाया और उसमें आदिनाथ भगवानकी मनोज्ञ प्रतिमा स्थापित की। यह मंदिर आजकल एरडुकट्ट बस्ति कहलाता है। लक्ष्मीदेवीकी माताका नाम नागले था और उनके भाई बूचिराज (बूचण) थे जो तेजस्वी और धर्मिष्ठ थे। शक सं. १०३७ वैशाख सुदि १ रविवारको सर्व परिग्रहका त्याग करके वह स्वर्गवासी हुए। लक्ष्मीदेवीकी एक बहन भी थीं जिनका नाम देवमति (देमति) था। वह चामुण्ड नामक एक प्रतिष्ठित और राजसम्मानित वणिककी धर्म-पत्नी भार्या थीं। उन्होंने अपना जीवन दानपुण्यके कार्योंमें व्यतीत करके शक सं. १०४२ फाल्गुण वदि ११ बृहस्पतिवारको समाधिमरण किया था। सौभाग्य यह कि लक्ष्मीदेवीके भाई-बहिन सब ही जैनधर्मके अनन्य उपासक थे। स्वयं लक्ष्मीदेवीको चार प्रकारका दान देनेमें रस आता था—मुनियोंसे धर्मकथा सुननेका उन्हें चाव था। मुनि मेघचन्द्र त्रैविद्य ने सन्यासमरण किया तब गङ्गराज और लक्ष्मीदेवीने उनकी निषधिका बनवाई। लक्ष्मीदेवीका सौभाग्य अटल था। शक सं. १०४४ में इस धर्मपरायण महिलाने सल्लेखनाविधिसे शरीर त्याग किया। गङ्गराजने अपनी साध्वी पत्नीकी स्मृतिमें निषद्या

---

१—जैशिसं, पृ १४७–१४८   २-३—जैशिसं पृ ५७–७

### गङ्गराजके कुटुम्बीजन जैनी—

गङ्गराजका कुटुम्ब ही जैनधर्मके रंगमें रंगा हुआ था। उनकी माता पोचिकब्बेने समाधिमरण किया तो गङ्गराजने उनका स्मारक निर्मित कराया। उनके लिये उन्होंने 'कत्तलेबस्ती' नामक मंदिर भी निर्माण कराया था।[1] गंगराजकी भावज जक्कणब्बे भी अपनी सासके समान धर्मिष्ठ महिला थीं। वह जिनपूजामें हमेशा पगी रहतीं थीं। उन्होंने एक वृहद् जिनपूजाका उत्सव कराया और दान दिया था। वह अपने चारित्र, शील और सत्यभाषणके लिये प्रसिद्ध थीं। वह निरन्तर व्रत और उपवास किया करतीं थीं। एकवार उन्होंने मोक्षतिलक नामक व्रत किया और देवकी स्थापना की।[3] उनके पुत्र बोप्प थे। गङ्गराजके सबसे बड़े भाईका नाम बम्मदेव था। उनकी पत्नी बागणब्बे थीं। वह दम्पति भी जिनेन्द्रभक्त थे। इनके पुत्र निर्मलयशके धारी दंडाधिप ऐच थे। इन दंडाधिप ऐचने कापणतीर्थमें तथा बेलगुल एवं अन्य स्थानोंमें भी जिनमंदिर निर्मापित कराये थे, जिनकी दीवालों पर सुन्दर नकाशीका काम हो रहा था। उन्होंने सन्यास मरण किया था।[4]

### गङ्गराजकी धर्मपत्नी लक्ष्मीदेवी—

गङ्गराजकी धर्मपत्नी नागलादेवी थीं जिनका अपर नाम लक्ष्मीदेवी भी था। उनके गुरु भी श्री शुभचन्द्रदेव थे। श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं० ६३ में उनके विषयमें लिखा है कि पातिव्रत

१–जैशिसं०, मू० पृष्ठ ९१ २-इका०, भा० २ पृष्ठ ४६ ३–जैशिसं०, पृष्ठ ३६९ ४–जैशिसं० पृष्ठ २९८

(१) चामल या चामाम्बा, (२) केलेयम अथवा कुमारम्म और (३) पम्प अपर नाम नागदेव भारतकी पत्नियां आसियब्बे और पदमबे थीं जिनके पुत्र पुनिसमय्य और बिट्टिग हुये। पुनिसमय्य गंगराजके साथी और विष्णुवर्द्धन सम्राट्के संधि विग्रहके मंत्री थे। पुनिसमय्य एक वीर योद्धा और कुशल सेनापति भी थे। उनकी विजयोंसे विष्णुवर्द्धनको दक्षिण विजय करनेमें उल्लेखनीय सुविधा प्राप्त हुई थी। गंगराज जब चोलोंसे तलकाड् जीतनेमें जुटे रहे थे तब पुनिस यहाँ पड़ोसमें स्थित नरेशके सहायक कोंगल्व, कोङ्गाल्व, टोड और केरल नरेशोंसे मोरचा लेरहे थे। गंगराजकी तलकाड् विजयके साथ ही पुनिसने दक्षिण नीलगिरिके मुखद्वार पर विजय प्राप्त की। उन्होंने शत्रुओंको परास्त करके नील पर्वतमें प्रवेश किया और केरल प्रदेश अधिकृत होगये।

उनके धर्मकार्य—

गंगराजके अनुरूप दण्डनायक पुनिस भी उदार-हृदय थे। उनके हृदयोंमें लोककल्याणका करुणाभाव विद्यमान था। चामराज नामक पार्श्वनाथ बस्तीके शिलालेखसे विदित है कि दण्डनाथ पुनिसके निकट कदाचित् प्रमाद वशिक अथवा भीतके लिये कटपटाता किसान या शक्तिहीन हुआ किरात पहुंचता और अपनी दुख गाथा सुनाता तो वह उसकी समुचित सहायता करके उसे पूर्व स्थितिमें पहुंचा देते थे। उनका दान भेदभाव नहीं जानता था—जैनेतर लोगोंको भी उन्होंने दान दिया था किन्तु जैनधर्मके लिये तो वह

१–मै० इ० ११ –१४१

दण्डनायक बोप्प—

गंगराजके सुपुत्र दण्डनायक बोप्प भी जैनधर्मभक्त और एक वीर योद्धा थे। उन्होंने कोंगलनाडको मार भगाकर अपने शौर्यका परिचय दिया था। अध्यविद्यामें वह अपने पिताके समान थे। विद्वानोंके वह मित्र थे। महासामन्ताधिपति और महाप्रचण्ड दण्डनायक वह कहे जाते थे। उन्होंने अपने पिताकी पवित्र स्मृतिको स्थिर रखनेके लिये द्वारसमुद्रमें द्रोहघरट्ट नामक जिनालय निर्मित किया था। यह उनका स्मारक इससे श्रेष्ठ और हो भी क्या सकता था! राष्ट्र और धर्मकी प्रभावनाके लिए वह जीते थे। जैनमंदिर राष्ट्र और धर्मके सांस्कृतिक केन्द्र थे। बोप्पने गंगराजकी पुनीत भावनाको ही मन्दिर बनाकर सजीवित कर दिया। जब वह जिनालय बनकर तैयार हो-गया और उसकी प्रतिष्ठा पूजा होगई—श्री पार्श्वजिनेन्द्रकी प्रतिमा उसमें विराजमान कर दी गई तब जिनालयके इन्द्र (पुजारी) शेषाक्षत लेकर सम्राट् विष्णुवर्द्धनके पास गये। उस समय सम्राट् बंकापुरमें थे। वह वहाँ कदम्ब सेनापति मसणको नष्ट करके आये थे और अपनी विजयपर प्रसन्न थे। उसी समय उन्होंने अपने पुत्र जन्मकी शुभ वार्ता भी सुनी थी। राज्यका उत्तराधिकारी उत्पन्न हुआ जानकर उनका आनन्दविभोर होना स्वाभाविक था। ऐसे समयमें जैन पुजारियोंका आगमन सम्राट्को शुभ सूचक प्रतीत हुआ। उन्होंने उन्हें निकट बुलाया और सिंहासनसे उठकर नमस्कार पूर्वक गंधोदक और शेषाक्षत मस्तकसे लगाये। भक्तिप्लावित हृदयसे वह बोले

१–एपि० क० २, १, ११५.

बनवाकर महापूजा रची और दान दिया । उन्होंने अपने गुरु शुभचन्द्र देवकी भी निषद्या बनवाई थी ।[१]

**गङ्गराजका विवेक भाव—**

गङ्गराज वीर योद्धा और सफल शासक थे । किन्तु उनका जीवन धर्मालोकसे निर्मल और पवित्र था । उन्होंने धर्मका अपना भाव सात बातोंमें निहित किया था । उन्होंने कहा, 'दुनियामें सात नर्क इन बातोंको समझना चाहिये, अर्थात् (१) असत्य बोलना, (२) संग्राममें भयभीत होना, (३) परस्त्रीमें आसक्त होना, (४) शरणार्थियोंको छोड़ देना, (५) प्रार्थियोंको सतुष्ट न करना, (६) अपने सम्बन्धी जनोंके प्रति कर्तव्यको भुला देना, (७) और स्वामिके साथ विश्वासघात करना ।'[२] इस उल्लेखसे धर्म वार्तामें उनकी परीक्षा-प्रधानता झलकती है—वह विवेकसे काम लेना जानते थे ।

इन्हीं बातोंके कारण दक्षिणभारतके जैन इतिहासमें उनका एक विशेष स्थान है । इसलिये उनके विषयमें शिलालेखमें लिखा है कि "जिनधर्ममें मूलसघ कुन्दकुन्दान्वय सर्व प्राचीन है, और उस सघको उन्नत बनानेवाले निस्सन्देह गङ्गराज है ।" अन्यत्र यह प्रश्न किया गया कि प्रारम्भमें जिनधर्मके सुदृढ़ प्रभावक कौन थे ? इसका उत्तर वहां यह दिया गया कि 'चामुण्डरायके उपरान्त विद्वानों द्वारा सम्मानित विष्णुभूपके दण्डनायक गङ्गराज !" सन् ११३३ में गङ्गराजके स्वर्गवासी होनेसे जैनधर्मका एक स्तम्भ ही नष्ट होगया था ।[३]

---

१–जैशिस०, पृ० ६८ २–इका०, भा० ५ पृ० ८२–८३
३–मेजै०, पृ० १२८–१८९

"इन देवके प्रतिष्ठा माहात्म्यसे ही निस्सन्देह मुझे अपने शत्रुपर विजय प्राप्त हुई है और राज्यका उत्तराधिकारी पुत्र-रत्न भी उत्पन्न हुआ है। मेरे हर्ष और आनन्दके कारण यह देव ही है। अतः इनका सार्थक नाम विजय पार्श्वनाथ ही उपयुक्त है और इसके नामकी उपेक्षा मेरा पुत्र विजयनरसिंह ही कहलायेगा।" यह कह कर उन्होंने देवपूजा, जीर्णोद्धार आदिके लिये जावगल आदि कई ग्रामोंका दान किया। बोप्पन केवल एक बड़ी जिनालय नहीं बनवाया, बल्कि उन्होंने अपने पिताकी धार्मिक निष्ठाको प्रचलित रक्खा। उन्होंने द्वारासमुद्रमें दो और जिनालय बनवाये और नागमगल तालुकके कम्मडहल्लि ग्राममें 'शान्तीश्वर बसति' नामक जिनमंदिर बनवाया। यह मन्दिर 'त्रिभुवनरंजन' नामसे भी प्रसिद्ध था, क्योंकि द्रोहरघरट्टाचारि नामक शिल्पीने इसे इतना सुन्दर बनाया था कि उसे देखते ही चित्त प्रसन्न होजाता था। दंडनायक बोप्प स्वयं धर्मविज्ञ विद्वान् थे और विद्वानोंका आदर करते थे, किन्तु उनकी कोई रचना अभीतक उपलब्ध नहीं हुई है।[1]

दंडनायक पुणिस—

गंगराजके साथी सेनापति दंडनायक पुणिस थे। उनके कुलमें कई पूर्वज राजमंत्रीपदको सुशोभित कर चुके थे। उनके पिता पुणिसराज (चौवल) दण्डाधीश कहलाते थे। और उनका विरुद 'सकल शासन-वाचक चक्रवर्ती' था। राज्यके शासनपत्रोंको वही पढते थे। उनकी पत्नी पोचले नामक थी, जिनसे उनके तीन पुत्र हुये,

१-मेजै०, पृष्ठ १३०-१३२.

दूसरे गंगराज थे। उन्होंने निशङ्क होकर गंगवाडि प्रान्तके सब ही जिनमंदिरोंको अलंकृत करके सुन्दर बनाया था। अरकोट्टार नामक स्थानपर उन्होंने 'त्रिकूट' जिनालय बनवाकर उनके लिये भूमिदान दिया था। चामराजनगर और बस्तिहल्लीमें उन्होंने 'पार्श्वनाथ बस्ति' नामक मंदिर निर्माण कराये थे। माणिकोबोल्लके सभी जिनमंदिरोंको उन्होंने भूमि और धन दानमें दिये थे। उनके गुरु श्री अजितसेन पंडितदेव थे।[1]

दण्डनायिकि जक्कियव्वे—

दंडाधिप पुणिसकी पत्नीका नाम जक्कियव्वे था, जो अपने पतिकी अपेक्षा 'दण्डनायकि' कहलाती थीं। वह भी जैनधर्मकी श्रद्धालु श्राविका थीं। सन् १११७ में उन्होंने कृष्णराजपेटे तालुकके बस्तिहोसकोटे नामक स्थानमें पाषाणका एक जिनमंदिर निर्माण कराया था। इस मंदिरके उत्तरमें स्वयं पुणिसने 'मूलस्थान' नामक मंदिर बनवाया था, जो वहांके विष्णुवर्द्धन पोय्सल जिनालयसे सम्बन्धित था। इन जिनालयोंके लिये पुणिसने कई ग्रामोंका दान किया था। जक्कियव्वेकी तुलना सीता और रुक्मिणीसे की गई है।[2]

सेनापति बलदेव—

सन् ११२० ई० के लगभग विष्णुभूपके सेनापति बलदेव थे। असादित्य नामक राजा और उनकी रानी अम्बाम्बिकके तीन पुत्र (१) पम्पराज (२) हरिदेव और (३) मंत्रिसमूहमें अग्रगण्य गुणी बलदेव हुये। ये तीनों ही भाई लोकप्रसिद्ध कर्णाटक कुलके तिलक,

१-२-मैजै० पृ० १३३ व १६३-९४

जो भी जिन देखना मंदिर ही मंदिर पाता था। श्रवणबेलगोलके चन्द्रगिरि पर्वतपर उनकी प्रतिष्ठा कराई हुई दो विशालकाय प्रतिमायें (१) भरत, (२) और बाहुबलि महाराजकी थीं। इन मूर्तियोंके आसपास उन्होंने कटघर (हप्पलिगे) बनवाया था। गोम्मटेश्वरके आस-पास बड़ा गर्भगृह बनवाया और सीढ़ियां भी बनवाईं। उनके गुरु देशीगण पुस्तकगच्छके आचार्य माघनंदिके शिष्य गण्डविमुक्तस्वामी देव थे। भरतके ज्येष्ठ भ्राता मरियाणेके गुरु भी गण्डविमुक्तस्वामी थे, परन्तु भरतकी पत्नी हरियब्बेके गुरु स्वयं माघनन्दिजी थे। भरतकी पुत्री शान्तले भी जिनेन्द्रभक्त थी।[1]

भरत और बाहुबलिके धर्मकार्य—

दंडनायक मरियाणके पुत्र भरत और बाहुबलि थे, जो सम्राट् नरसिंहके सेनापति थे। राज्यसे इन्हें जागीरें मिली थीं। उन्होंने जननाथपुरमें एक जिनमंदिर बनवाकर उसके लिए दान दिया था और बाकेयन हल्लिके प्राचीन जिनमंदिरको भी दान दिया था। यह दान कोल्लापुरकी सामन्तवसतीसे सम्बन्धित गंडविमुक्तदेवके शिष्य देवचन्द्र पंडितको सन् ११८४ में दिया था। इसप्रकार इस महान् देशमें जैनधर्मकी उल्लेखनीय मान्यता रही थी और उसके द्वारा देश और धर्मका विशेष उपकार हुआ था।

दण्डनायक ऐच—

दण्डनायक बोपकी धर्मपत्नी बागनव्वेकी कोखसे सम्राट् विष्णु-

१–जैशि० पृ ११५–११६ २–जैशिसं० भा० पृ ९४ १–४–मेज पृ ११६–१७

अटल थी। इसीलिए एक लेखमें लिखा है कि वे स्याद्वाद–लक्ष्मीके कानोंके लिये सुन्दर बालियां थे, जिनपूजाके नित्य नैमित्तिक अभिषेक और उत्सवमें उन्हें आनन्द आता था। चारों प्रकारका दान देना उनका विनोद था। वे अकलङ्क सिद्धान्तके लिये नेत्र रूप थे। इसका अर्थ यह है कि उन्होंने अकलङ्क देव प्रणीत न्यायशास्त्रका विशेष अध्ययन किया था–वे उसके पूर्णज्ञाता और व्याख्याता थे। मरियाणे द्वि० तो विष्णुभूपके 'राजहस्ति' (पट्टद आने) ही थे। भूपने उन्हें सेनाधिकारी नियुक्त किया था। वैसे दोनों ही भाई विष्णुभूपके सर्वाधिकारी माणिकभंडारी और प्राणाधिकारी (Commanders of the Life Guards) दंडनायक थे। उनका यह पद उनके महत्व और उच्च पदको व्यक्त करता है।[1] भरतेश्वर दंडाधिप जैनधर्मके अनन्य प्रभावक थे। एक शिलालेखसे ज्ञात है कि उनकी सारी सम्पदा जिनमंदिरोंके लिये थी, उनका सारा प्रेम प्रजाके लिये था, उनका समूचा सद्भाव जिनराजकी पूजाके लिये था, उनकी समग्र समुदारता सज्जनोंकी संगतिमें निहित थी, और उनकी दानशीलता पूज्य मुनीन्द्रोंकी विनय करनेके लिये उत्सर्ग थी। इस वर्णनमें अतिशयोक्ति यूं नहीं दिखती कि अन्य शिलालेख भरतेश्वरके महती धर्मकार्योंका उल्लेख करते हैं। श्रवणबेलगोलमें ही उन्होंने अस्सी जिनालय बनवाये थे और अनेक जिनप्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराई थी। यही नहीं, गंगवाडिके दोसौ प्राचीन मंदिरोंका जीर्णोद्धार भी उन्होंने कराया था। परिणामतः

---

१–मैजै०, पृ० १३४–१३५।

जो भी जिन देवता मंदिर ही मंदिर बना था। श्रवणबेळगोळके चन्द्रगिरि पर्वतपर उनकी प्रतिष्ठा कराई हुई दो विशालकाय मूर्तियाँ (१) भरत, (२) और बाहुबलि महाराजकी थीं। इन मूर्तियोंके आसपास उन्होंने परकोट (हप्पलिगे) बनवाया था। गोम्मटेश्वरके आसपास बड़ा गर्भगृह बनवाया और सीढ़ियाँ भी बनवाई। उनके गुरु देशीगण पुस्तकगच्छके आचार्य माघनंदिके शिष्य गण्डविमुक्तस्वामी देव थे। भरतके ज्येष्ठ भ्राता मरियानेके गुरु भी गण्डविमुक्तस्वामी थे; परन्तु भरतकी पत्नी हरियब्बेके गुरु स्वयं माघनन्दि थे। भरतकी पुत्री शान्तलदे भी जिनेन्द्रभक्त थी।[1]

## भरत और बाहुबलिके धर्मकार्य—

दंडनायक मरियानेके पुत्र भरत और बाहुबलि थे, जो सम्राट् बल्लालके सेनापति थे। राजासे उन्हें जागीरें मिली थीं। उन्होंने जननस्थानमें एक जिनमंदिर बनवाकर उसके लिए दान दिया था और कोप्पण आदिके प्राचीन जिनमंदिरोंको भी दान दिया था। यह दान कोल्लापुरकी सामन्तबसदीसे सम्बन्धित गंडविमुक्तदेवके शिष्य देवचन्द्र पंडितको सन् ११८४ में दिया था। इसप्रकार इस मासन वंशमें जैनधर्मकी उल्लेखनीय मान्यता रही थी और उसके द्वारा देश और धर्मका विशेष उपकार हुआ था।

## दंडनायक एच—

दंडनायक बोप्पकी धर्मपत्नी नागलदेवीकी कोखसे सम्राट् विष्णु-

---

१-जैशि० पृ० १२६-१३१ २-मैडि० मू० पृ० १४ ३-४-वही पृ० १३६-३७

वर्द्धनके सेनापति ऐचका जन्म हुआ था। ऐच दण्डनायक गङ्गराजके पोते थे और उनके ही समान वीर और धर्मात्मा थे। उनकी माँ एक धर्मिष्ठ महिला थीं, जो गुरु भानुकीर्तिदेवके उपदेशसे धर्मकर्ममें व्यस्त रहतीं थीं। दण्डनायक ऐच एक विशाल-हृदय जन थे। सन् ११३४ में इन्होंने श्रवणबेल्गोलके जिन मंदिरोंको ऐसा सुन्दर बनाया कि वह कोपण आदि तीर्थों जैसे दिखने लगे। इन्होंने बेल गलिके गङ्गेश्वर मंदिरको भी दान दिया था। सन् ११३५में इन्होंने सल्लेखना व्रत द्वारा स्वर्ग-सुख प्राप्त किया था। उनका जीवन सुखमय बीता-वह निरन्तर दान पुण्य और धर्म प्रभावनाके कार्य करनेमें आनंद लेते रहे।[1]

दण्डनायक बिट्टिमय्य—

सम्राट् विष्णुवर्द्धनके सेनापतियोंमें दण्डनायक इम्मडि बिट्टिमय्यका व्यक्तित्व अनूठा था। वह सब ही सेनापतियोंमें आयुमें छोटे और विष्णुवर्द्धनको अतिप्रिय थे। उनका जन्म उस कुलमें हुआ, जो काश्यप कहलाता था और जिसमें राजमंत्री होते आये थे। आदि-ब्रह्म द्वारा कृतयुगमें काश्यप प्रजापतिसे काश्यपगोत्रकी उत्पत्ति हुई थी। उस वंशमें उदियादित्य और उनकी पत्नी मान्तियक्कसे उत्पन्न चिण्णराज हुये। वह ऐरेयङ्ग नृपके राजदण्डाधीश थे। उनकी पत्नी चन्दले थी, जिनकी कोखसे कई पुत्रियां और दो पुत्र (१) उदयन और (२) विष्णु ( बिट्टिमय्य ) जन्मे थे। उदयन यादव ( होयसल ) राजाओंके राजसमुद्रके लिये चन्द्रमाके तुल्य थे। विष्णु जब योग्य

१-मैसे० पृ० १३७

सबके हुए तो उन्हें तार्किक चूडामणि आचार्य श्रीपाल त्रैविद्यदेवके पढ़नेके लिए सुपुर्द कर दिया गया। गुरु श्रीपाल तपोविभूति कलियुग गणधर श्री मल्लिषेण मलधारिके शिष्य थे। वह स्वयं तार्किक चक्रवर्ती वादीभसिंह कहलाते थे। श्रीपाल योगीने सारी लोककी विद्यारूपी नदियोंमें जिनधर्म कमलसे मैल धोकर साफ़ करदी थी और व्याकरण कमलको भी खिला दिया था। उन्होंने गद्य, पद्य और सुभाषित टीकायें रची थीं जिनमें विपक्षियोंका निरसन करनेके लिए न्यायशास्त्रके षट्वादोंका भी विवरण था। इन्हीं योग्य गुरुके आश्रममें विट्टिग्गदेवने अपनी शिक्षा और दीक्षा पाई थी। गुरुकी परम सेवा और अनुग्रहसे वह सब ही विद्याओं और कलाओंमें निष्णात हो गये थे। गुरुकुलसे निवृत्त आनेपर स्वयं सम्राट् विष्णुवर्द्धनने उनका उपनयन संस्कार किया और उनका विवाह भी अपने राजमंत्रीकी एक योग्य कन्याके साथ कर दिया। सम्राट्ने स्वयं अपने हाथोंसे विट्टिग्गदेवको स्वर्ण स्नान कराके वस्त्र उनको प्रदान की। ग्यारह वर्षकी नन्हींसी आयुमें ही वह कुशाग्रबुद्धि होगये थे-राजभक्ति, निस्पृहता सन्तोष और साहसमें उनको भरपूर देखकर सम्राट्ने उनको महाप्रचण्ड दण्डनायक और सर्वाधिकारी नियुक्त किया। इस महत्पदको पाकर भी वह नम्र परोपकारी ही रहे! शासन-सत्ताके मदमें बह नहीं गये। उनके विरुद—

इसलिये दंडनायक विट्टिग्गदेवने शीघ्र ही अपने साहस और शौर्यसे भुजबलकी कीर्ति प्राप्त करली। उनके विरुद उनके प्रताप

१-इपि० क० १ पृ० ४८-९ २-मेडि० जै० पृ० ११८

और विशालचारित्रको प्रगट करते हैं। वह 'चातुर्य्यचतुरानन'– 'समस्तशास्त्रविद्यापडानन' 'शुभलक्षणोपलक्षित'–'अक्षयसौभाग्य–भाग्याभिराम्'–'रूपनिर्जित कुसुमचाप'–'विरोधीवीर–भट–भयङ्कर' 'परदुराप दुर्द्धर प्रताप'–'पञ्चाङ्ग मंत्र प्रणयान्वित साचिव्य स्वयंबुद्ध चतुर उपधा विशुद्ध नाना नयोपाय प्रावीण्य प्रत्यक्ष योगान्धरायण' 'स्वामिभक्तियुक्त वैनतेय' और 'निज विजय भुजदंड निर्लोपित रथतुरंग–करि घटा घटित समर संघट्ट' कहलाते थे। शिलालेखमें लिखा है कि सारे लोकका अच्छा भाग्योदय था जो वह उत्पन्न हुये थे। श्री अर्हत् भगवानके चरणकमलोंमें लीन वह लोकके लिये शरणभूत थे।[1]

उनकी विजय—

कोङ्गु देशके राजाने सम्राट्को वार्षिक कर नहीं चुकाया था। सम्राट्ने बिट्टिमय्यको उससे कर लेने और दण्ड देनेके लिये नियुक्त किया। बिट्टिमय्य चतुरंगिणी सेना लेकर कोङ्गु देशपर चढ गये– महा घमासान युद्ध हुआ। विजयलक्ष्मी बिट्टिमय्यको मिली। उन्होंने पन्द्रह दिनमें ही चेङ्गिरिको भगा दिया, उसकी राजधानी जला डाली और सारे देशको लूट लिया। विष्णुभूप उनकी लाई हुई शत्रु सामिग्री और हाथियोंके समूहको देखकर आश्चर्य करने लगे। वह सामन्त जो पहले उनके शौर्यमें शङ्का करते थे और कहते थे कि न जाने यह बालक सेनापति विजयी होकर लौटेगा ?, उनकी विजयपर

---

१–'श्रीमदर्हत्...ने ... विपश्चिज्जनैकशरणं'–इका० ५ पृ० ४८।

दाँतों तले उंगली दबा गये । वास्तवमें चोल, पाण्ड्य और कदम्ब राजाओंने होयसलोंके विरोधमें एक संयुक्त सेना उपस्थित की थी और उसका मोरचा लेना सुगम न था । किन्तु युवक विट्टिगदेव अपना अपूर्व शौर्य रणकौशलका परिचय देकर उसके छक्के छुड़ा दिये। कोंगुदेशपर होयसलोंका अधिकार होगया । इसी आक्रमणमें विट्टिग-देवने राजाधिपुरको भी अग्निसे भस्म कर दिया था। उन्होंने ठौर२ पर विजयस्तम्भ बनाकर सम्राट् विष्णुवर्द्धनकी कीर्तिको अमर बनाया था।

धर्मकार्य—

सम्राट् विष्णुवर्द्धनके दक्षिणबाहु यह युवक दण्डनायक भरतानु जैन थे । जब यह युवा परिपक्व-बुद्धि हुए—उन्हें लोक परलोकका अनुभव हुआ तो उन्हें धर्मवीर बननेकी भी सुध आई । उन्होंने अनेक तीर्थोंको दान दिया और द्वारासमुद्रमें एक उत्तुंग जिनालय निर्मापित कराया । उसका नामकरण उन्होंने सम्राट् विष्णुवर्द्धनके नामकी अपेक्षा विष्णुवर्द्धन जिनालय' रक्खा । उन्होंने अपने गुरु श्रीपालदेवको इस मंदिरकी पूजा और जीर्णोद्धार और ऋषियोंके आहारदानके लिए शीयलेल ग्राम एवं अन्य भूमिका दान दिया था ।

नरसिंह प्र के दंडनायक—

सम्राट् नरसिंह प्रथम ( सन् ११४१–११७३ ई० ) का राज्यकाल भी जैन सेनापतियोंके कार्योंसे आलोकमान था । उनके सेनापति हुल्ल, महाराय और चामुण्डरायके समान महान थे । उनके साथ सेनापति देवराज, शान्तियण्ण और ईश्वर भी उल्लेखनीय वीर

१-१-जैशि० पृ० ११०-१४ व हम० भा ५, पृ ५

और विशालचारित्रको प्रगट करते हैं। वह 'चातुर्य्यचतुरानन'–'समस्तशास्त्रविद्यापडानन' 'शुभलक्षणोपलक्षित'–'अक्षयसौभाग्य–माग्या-भिराम्'–'रूपनिर्जित कुसुमचाप'–'विरोधीवीर–भट–भयङ्कर' 'परदुराप दुर्द्धर प्रताप'–'पञ्चाङ्ग मत्र प्रणञ्चाञ्चित साचिव्य स्वयंवुद्ध चतुर उपधा विशुद्ध नाना नयोपाय प्रावीण्य प्रत्यक्ष योगान्धरायण' 'स्वामिभक्तियुक्त वैनतेय' और 'निज विजय भुजदंड निर्लोपित रथतुरंग–करि घटा घटित समर संघट्ट' कहलाते थे। शिलालेखमें लिखा है कि सारे लोकका अच्छा भाग्योदय था जो वह उत्पन्न हुये थे। श्री अर्हत् भगवानके चरणकमलोंमें लीन वह लोकके लिये शरणभूत थे।[१]

उनकी विजय—

कोङ्गु देशके राजान सम्राट्को वार्षिक कर नहीं चुकाया था। सम्राट्ने चिट्टिमय्यको उससे कर लेने और दण्ड देनेके लिये नियुक्त किया। चिट्टिमय्य चतुरंगिणी सेना लेकर कोङ्गु देशपर चढ गये– महा घमासान युद्ध हुआ। विजयलक्ष्मी चिट्टिमय्यको मिली। उन्होंने पन्द्रह दिनमें ही चेङ्गिरिको भगा दिया, उसकी राजधानी जला डाली और सारे देशको लूट लिया। विष्णुभूप उनकी लाई हुई शत्रु सामिग्री और हाथियोंके समूहको देखकर आश्चर्य करने लगे। वह सामन्त जो पहले उनके शौर्यमें शङ्का करते थे और कहते थे कि न जाने यह बालक सेनापति विजयी होकर लौटेगा ?, उनकी विजयपर

१–'श्रीमद्अर्हत्परमेश्वरपदपयोजराट्चरणं विपश्चिज्जनैकशरणं'–इका॰ मा॰ ५ पृ॰ ४८.

दोनों उसे ढंगकी बना गये। वास्तवमें चोल, चेर, पाण्ड्य और मलय राजाओंने होय्सलोंके विरोधमें एक संयुक्त सेना उपस्थित की थी और उसका मोरचा लेना सुगम न था। किन्तु युवक विट्टिगदेवने अपने अपूर्व शौर्य स्वकौशलका परिचय देकर उसके छक्के छुड़ा दिये। कोंगुदेशपर होय्सलोंका अधिकार होगया। इसी आक्रमणमें विट्टिगदेवने राजराजपुरको भी अधिकार मग्न कर दिया था। उन्होंने ठौर२ पर विजयस्तम्भ बनाकर सम्राट् विष्णुवर्द्धनकी कीर्तिको अमर बनाया था।

धर्मकार्य—

सम्राट् विष्णुवर्द्धनके दक्षिणबाहु वह युवक दण्डनायक भरतादि जैन थे। जब वह युवा परिपक्व-बुद्धि हुये—उन्हें अनेक पदोंका अनुभव हुआ तो उन्हें धर्मवीर बननेकी भी सुध आई। उन्होंने अनेक तीर्थोंको दान दिया और द्वारसमुद्रमें एक उत्तुंग जिनालय निर्मापित कराया। उसका नामकरण उन्होंने सम्राट् विष्णुवर्द्धनके नामकी अपेक्षा विष्णुवर्द्धन जिनालय रक्खा। उन्होंने अपने गुरु श्रीपालदेवको इस मंदिरकी पूजा और जीर्णोद्धार और ऋषियोंके आहारदानके लिये जीवगोड ग्राम एवं अन्य भूमिका दान दिया था।

नरसिंह प्र० के दण्डनायक—

सम्राट् नरसिंह प्रथम (सन् ११४१–११७३ ई०) का राज्यकाल भी जैन सेनापतियोंके कार्योंसे अलंकृतमान रहा। उनके सेनापति हुल्ल, गंगराज और चामुण्डरायके समान महान थे। उनके साथ सेनापति देवराज शान्तियप्प और ईश्वर भी उल्लेखनीय वीर

१-२-मैजै० पृ० ११७–१४, जै० शि० सं० भा० ५, पृ० ५

थे। शिवराज और सोमेय राजमन्त्री भी जैनधर्मके उपासक थे।

**दण्डनायक देवराज—**

प्रधान दण्डनायक देवराज कौशिक गोत्रके थे। उनके गुरु मुनिचन्द्र भट्टारक थे, जो छत्तीस गुणों (?) से अलंकृत और पंच आराधनाओंसे सयुक्त थे। देवराज होयसल राजमंदिरको शिखिरके चमकते हुये रत्न-कुम्भ थे। नरसिंहदेव उनका पुण्यानुसारिणी बुद्धि और स्वामिभक्ति पर ऐसे प्रसन्न हुवे कि उन्होंने उनको सूरतहल्लि-ग्राम भेंट किया। देवराजने उस ग्राममें एक जिनालय बनवाया। सम्राटने इस मंदिरके लिए भी दान दिया और ग्रामका नाम बदल-कर पर्वपुर रख दिया, क्योंकि जिनमंदिरके होजानेसे वहा धर्मपर्व उत्सव मनाये जाने लगे थे।[1]

**महाप्रधान दंडाधिप हुल्ल—**

किन्तु दण्डनायक हुल्ल उस समय जैनधर्मके सुदृढ स्तम्भ थे। ... लोकप्रसिद्ध सेनापति और वीर सुभट थे। वह वाजिकुलके रत्न ... उनके पिता अकलङ्क चरित्र श्री यक्षराज थे। लोकवन्दित सुशीला-चरणयुक्त श्री लोकाम्बिके उनकी माता थीं। लक्ष्मण और अमर उनके ज्येष्ठ भ्राता थे। उनकी धर्मपत्नी पद्मावतीदेवी थीं। हुल्ल श्रद्धालु जैन ही नहीं प्रत्युत् अनुभवी राजनीतिज्ञ भी थे। वह प्रधान सचिव, राजभंडारी, सर्वाधिकार और सेनापतिके पदोंको शोभायमान करते थे। राजनीतिमें वह बृहस्पतिसे भी बढ़े चढ़े थे और राज्य-व्यवस्थामें योगन्धरायणके चातुर्यको चिनौती देते थे। वह विष्णुभूपके

---

१—मेजै०, पृष्ठ १४०–१४१

समयमें भी राजदरबारमें मौजूद थे और पश्चात् द्वि... के भी राजमंत्री रहे थे।

हुल्ल—जैन धर्मके स्तम्भ—

हुल्ल दण्डाधिप प्रसिद्ध जिनभक्त थे। इसीलिये वह श्री जैन पूजा समाज महोत्सव-धर्म पुरन्दर कहलाते थे। उनके शिक्षागुरु श्री नयकीर्ति सिद्धान्तदेव और धर्म गुरु श्री कुक्कुटासन मलधारिदेव थे। दण्डाधिप हुल्ल उनकी परमसेवा करते और उनसे धर्मपुराण सुनकर अपना सौभाग्य मानते थे। उन्हें जैन पुराण सुनने और जैन साधुओंको आहारादि देनकी बड़ी रुचि थी। मंत्रीजीको जैन मंदिरोंका निर्माण व जीर्णोद्धार करानेका बड़ा चाव था। उन्होंने बंकापुरके भारी और प्राचीन दो मंदिरोंका जीर्णोद्धार कराया और कल्लिदिर सामन्तके जीर्ण हुए मंदिरको पुन कैलासके समान ऊँचा बनवाया। कोपण महातीर्थमें २४ जिनमुनियोंके संघको नित्य दानके लिये वृत्तियों का प्रबन्ध किया। गंग नरेशों द्वारा स्थापित प्राचीन आदि तीर्थ केल्लंगेरेमें एक विशाल जिनमंदिर व अन्य पांच जिनमंदिर पांच महाध्यक्षोंकी मातहतसे निर्माण कराये। बेल्गुलमें गोम्मटेश्वरका परकोटा रंगशाला और दो आश्रमों सहित चतुर्विंशति तीर्थंकर मंदिर निर्माण कराया। इस मंदिरके तोरणद्वार दर्शनीय थे और गोम्मटपुरकी शोभा बढ़ानेके लिए यह मंदिर एक मनमोहक रत्न था। इस मंदिरका सौंदर्य देखकर होय्सल नरेश नरसिंह मुग्ध हो गए। उन्होंने जिन-प्रतिमाओं और गोम्मटदेवकी वन्दना करके सवणेरु ग्राम भेंट किया

१-मैके पृ १४२ २-जैशिसं पृ ३७४ ३७५.

थे। शिवराज और सोमेय राजमन्त्री भी जैनधर्मके उपासक थे।

### दण्डनायक देवराज—

प्रधान दण्डनायक देवराज कौशिक गोत्रके थे। उनके गुरु मुनिचन्द्र भट्टारक थे, जो छत्तीस गुणों (?) से अलङ्कृत और पंच आराधनाओंसे सयुक्त थे। देवराज होयसल राजमंदिरकी शिखिरके चमकते हुये रत्न-कुम्भ थे। नरसिंहदेव उनकी पुण्यानुसारिणी बुद्धि और स्वामिभक्ति पर ऐसे प्रसन्न हुवे कि उन्होंने उनको सूरतहलि ग्राम भेंट किया। देवराजने उस ग्राममें एक जिनालय बनवाया। सम्राटने इस मंदिरके लिए भी दान दिया और ग्रामका नाम बदलकर पर्वपुर रख दिया, क्योंकि जिनमंदिरके होजानेसे वहां धर्मपर्व उत्सव मनाये जाने लगे थे।[1]

### महाप्रधान दंडाधिप हुल्ल—

किन्तु दण्डनायक हुल्ल उस समय जैनधर्मके सुदृढ़ स्तम्भ थे। वह लोकप्रसिद्ध सेनापति और वीर सुभट थे। वह वाजिकुलके रत्न थे। उनके पिता अकलङ्क चरित्र श्री यक्षराज थे। लोकवन्दित सुशीला चरणयुक्त श्री लोकाम्बिके उनकी माता थीं। लक्ष्मण और अमर उनके ज्येष्ठ भ्राता थे। उनकी धर्मपत्नी पद्मावतीदेवी थीं। हुल्ल श्रद्धालु जैन ही नहीं प्रत्युत् अनुभवी राजनीतिज्ञ भी थे। वह प्रधान सचिव, राजभंडारी, सर्वाधिकार और सेनापतिके पदोंको शोभायमान करते थे। राजनीतिमें वह बृहस्पतिसे भी बढ़े चढ़े थे और राज्य-व्यवस्थामें योगन्धरायणके चातुर्यको चिनौती देते थे। वह विष्णुभूपके

---

१—मेजै०, पृष्ठ १४०–१४१

समयमें भी राजदरबारमें मौजूद थे और नरसिंह द्वि॰ के भी राजमंत्री रहे थे।'

**हुल्ल–जैन धर्मके स्तम्भ—**

हुल्ल दण्डाधिप प्रसिद्ध जिनभक्त थे। इसीलिये वह भी जैन पूजा समाज महोत्सव–पर पुरन्दर कहलाते थे। उनके शिक्षागुरु श्री नयकीर्ति सिद्धान्तदेव और मन गुरु श्री कुक्कुटासन मलधारिदेव थे। दण्डाधिप हुल्ल इनकी उपासना करने और उनसे धर्मपुराण सुनकर अपना सौभाग्य मानते थे। उन्हें जैन पुराण सुनने और जैन साधुओंको आहारादि देनेकी बड़ी रुचि थी। मंत्रीजीको जैन मन्दिरोंका निर्माण व जीर्णोद्धार करानेका बड़ा चाव था। उन्होंने बंकापुरके भारी और प्राचीन दो मंदिरोंका जीर्णोद्धार कराया और कल्लिपिट सामन्तके जीर्ण हुए मन्दिरको पुनः कैलासके समान ऊँचा बनवाया। कोप्पण महातीर्थमें २४ जिनमुनियोंके सदन्न नित्य दानके लिये वृत्तियों का प्रबन्ध किया। गंग नरेशों द्वारा स्थापित प्राचीन आदि तीर्थ केल्लंगेरेमें एक विशाल जिनमंदिर व अन्य पांच जिनमंदिर पांच महाकल्याणोंकी भावनासे निर्माण कराये। बेल्गुलमें गोम्मटेश्वरका परकोटा रङ्गशाला और दो आश्रमों सहित चतुर्विंशति तीर्थंकर मंदिर निर्माण कराया। इस मंदिरके तोरणद्वार दर्शनीय थे और गोम्मटपुरकी शोभा बढ़ानेके लिए यह मंदिर एक मनमोहक रत्न था। इस मंदिरका सौंदर्य देखकर होय्सल नरेश नरसिंह मुग्ध हो गये। उन्होंने जिन-प्रतिमाओं और गोम्मटदेवकी वन्दना करके सवणेरु ग्राम भेंट किया,

---

१—[illegible]

यह पहले लिखा जा चुका है। मन्त्रिवर हुल्लने महामंडलाचार्य नयकीर्ति सिद्धान्त चक्रवर्तीको इस चतुर्विंशति वस्तीके आचार्य पदपर सुशोभित किया। सवणेरु ग्रामका दान उन्हींको दिया गया। सम्राट् बल्लाल द्वि०ने वह ग्राम और उसके साथ बेक्क और कगोरे नामक ग्राम भी गोम्मट-देवकी पूजाके लिये दंडाधिप हुल्लको दिये थे जो उन्होंने उत्सर्ग कर दिए। सन् ११६३ ई० में हुल्लने महामण्डलाचार्य गुरु देवकीर्ति-देवकी निषधिका बनवाई। श्री देवकीर्तिदेवने केल्लङ्गेरेमें प्रतापपुर वसदि (मंदिर) को निर्माण कराया था, जिसका सम्बन्ध कोल्लापुरकी रूपनारायण वसदि एवं देशीयगण और पुस्तक गच्छसे था। हुल्लने इस मंदिरका भी जीर्णोद्धार कराया और जिननाथपुरमें दानशाला बनवाई। इस प्रकार हुल्ल दंडाधिपने अनेक कार्य धर्मप्रभावनाके किये थे।

**धार्मिक चर्या—**

हुल्लके दैनिक जीवनकी परिचर्या उनकी धार्मिकताको व्यक्त करती है। एक शिलालेखमें लिखा है कि "वह प्रतिदिन अपना मूल्य समय जिनमंदिरोंके पुनर्निर्माणकी खुशीमें, सामूहिक जिन-पूजा करनेमें मुनियोंको दान देनेमें, जिनचरणोंकी प्रशंसा और विनय करनेमें और पवित्र जिनपुराणोंको सुननेमें विताते थे।" उनका सारा समय जिनधर्मकी उत्कर्ष भावना और प्रशस्त उत्साहमें व्यतीत होता था। तत्कालीन जैन इतिहासमें उनका अपना स्थान है। इसीलिये शिलालेखमें उल्लेख है कि "जैनधर्मके सच्चे पोषक कौन हुए? यदि यह पूछा जाय तो इसका उत्तर यही है कि प्रारम्भमें राचमल्ल नरेशके

मंत्री राय (चामुण्डराय) हुए, उनके पश्चात् विष्णुवर्धनके मंत्री गंगराज (गङ्गराज) हुए और अब नरसिंहदेवके मंत्री हुल्ल हैं " यह महाशयके सब ही जिनमंदिरोंके दान-सन्मानके लिये पूर्ण भक्त थे। उनके पुत्र दंडाधिप नरसिंह थे। हुल्लके भाई होयसलकी वृद्धि राज्य अध्यक्ष श्री हरियण्णने कुप्पेयनहल्लिमें जिनदेवको स्थापित किया था। उस समयमें पादिराजवर्धन प्रथम गुरुका स्मारक "पञ्चादिमल जिनालय" निर्माण कराया था। सर्वाधिकारी दंडाधिप कम्मट माचय्य (Supt. of Ceremonies) ने दान दिया था। कुन्दाड हेमारेम भी सम्मकीर्तिदेवकी आज्ञास बड़ी बसदि बनवाई थी। हुल्लदंड जिनके आदर्शका अनुकरण सब ही करते थे।

देहाधिप शान्तियण्ण—

सम्राट् नरसिंहके दूसरे सेनापति शान्तियण्ण थे। यह परियण्ण और जक्कव्वेके पुत्र थे। यह अदन्नगोत्री दंडाधिप महादित्यकी सन्ततिमें जन्मे थे। महादित्य अनन्तपुरके राजा थे और विद्यामें महाद्भुत थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र दंडनाधिप हुये जिनके पुत्र चामुण्ड विष्णुवर्धनके संधिविग्रहिक मंत्री थे। चामुण्डके ज्येष्ठ पुत्र माचनकी माँ चामब्बिका नागगउडकी धर्मपत्नि और रायसवर्मा पुत्री थीं। उनके पुत्र जिन हेगड़े रेचि मल्लप और पार्श्व हुये। पार्श्वने नितूरमें एक चैत्यालय बनवाया था। जिन सब विद्याओंमें पारगामी थे और सरस्वतीदेवी-पदम-पद्मरीक थे। उनकी पत्नी हरियब्बेसे चामुण्डरायका जन्म हुआ जो अपने पूर्वजोंके गुणोंसे सम्पन्न थे।

---

१–मैसू० [illegible]

यह पहले लिखा जा चुका है। मंत्रिवर हुल्लने महामंडलाचार्य नयकीर्ति सिद्धान्त चक्रवर्तीको इस चतुर्विंशति वस्तीके आचार्य पदपर सुशोभित किया। सवणेरु ग्रामका दान उन्हींको दिया गया। सम्राट् वल्लाल द्वि०ने वह ग्राम और उसके साथ वेक्क और कग्गेरे नामक ग्राम भी गोम्मट-देवकी पूजाके लिये दंडाधिप हुल्लको दिये थे जो उन्होंने उत्सर्ग कर दिए। सन् ११६३ ई० में हुल्लने महामण्डलाचार्य गुरु देवकीर्ति-देवकी निषधिका बनवाई। श्री देवकीर्तिदेवने केल्लङ्गेरेमें प्रतापपुर बसदि (मंदिर) को निर्माण कराया था, जिसका सम्बन्ध कोल्लापुरकी रूपनारायण बसदि एवं देशीयगण और पुस्तक गच्छसे था। हुल्लने इस मंदिरका भी जीर्णोद्धार कराया और जिननाथपुरमें दानशाला बनवाई।[1] इस प्रकार हुल्ल दंडाधिपने अनेक कार्य धर्मप्रभावनाके किये थे।

धार्मिक चर्य्या—

हुल्लके दैनिक जीवनकी परिचर्य्या उनकी धार्मिकताको व्यक्त करती है। एक शिलालेखमें लिखा है कि "वह प्रतिदिन अपना अमूल्य समय जिनमंदिरोंके पुनर्निर्माणकी खुशीमें, सामूहिक जिन-पूजा करनेमें मुनियोंको दान देनेमें, जिनचरणोंकी प्रशंसा और विनय करनेमें और पवित्र जिनपुराणोंको सुननेमें विताते थे।" उनका सारा समय जिनधर्मकी उत्कर्ष भावना और प्रशस्त उत्साहमें व्यतीत होता था। तत्कालीन जैन इतिहासमें उनका अपना स्थान है। इसीलिये शिलालेखमें उल्लेख है कि "जैनधर्मके सच्चे पोषक कौन हुए? यदि यह पूछा जाय तो इसका उत्तर यही है कि प्रारम्भमें राचमल्ल नरेशके

---

१–मेजै०, पृष्ठ १४५ व १४६।

ग्रहण कराया था। उनकी पत्नी माचिकब्बे साहणि बिट्टिगकी पुत्री थी। उनके गुरु मल्लधारिगुरुदेव थे। माचिकब्बे ऐसी धर्मिष्ठ महिला थीं कि वह चतुर्विधि संघ-धर्मकी रक्षिका कहलाती थीं। मासवबोल-कके पवित्र स्थानपर उन्होंने जिनमंदिर बनवाया और उसके लिए 'नवमल्लिकेरे' नामक तालाब निमाण करके मुनियोंको दिया।

खिवराज व सोमय—

हेर्गडे खिवराज और हेर्गडे सोमय भी नरसिंहदेवके दो बड़े सम्पति थे। उन्होंने सन् ११६५ ई० में माणिकबोलक स्थानके दानशाला विनालयको ऋषियोंके आहारदानके लिए कुछ जमीनका दान दिया था।

दंडनायक चाविम्मय्य—

दण्डनायक चाविमय्य सम्राट् नरसिंहदेवके प्रमुख पुरुष थे—सम्राट्को ताम्बूल समर्पित करते रहनेमें वह दक्ष थे। उनकी धर्मपत्नी अच्चे थीं। वह जिनदेवको ही अपना आप्त और निर्ग्रन्थ मुनि अजकीर्तिदेव सिद्धांत चक्रेश्वरको अपना गुरु मानती थीं। उनके पिता बम्मय्य और माता जक्कवे थी। उनकी ज्येष्ठ भगिनी पद्मिनब्बे थी। अच्चेने सुना कि बेगु भद्र और पवित्र स्थान है। उन्होंने तत्काल वहाँ एक जिनालय निर्माण कराया और उसमें देव पार्श्व-नाथकी प्रतिमा स्थापी। जिनेन्द्रकी अष्टप्रकारी पूजा मन्दिरके जीर्णोद्धार और ऋषियोंके आहारदानके लिए महामंडलेश्वर नरसिंहदेवकी आज्ञा लेकर भूमिका दान दिया।

१-२-मेज० पृ० १४७ व १६८ ३-मेज० पृ० १४७
४-एक० मा० ५ पृ० १६

उनके छोटे भाई बामन थे । चावुण्डकी धर्मपत्नी देकणब्बे थीं । उन्हींकी कोखसे शांतियण्णके पिता परिषण्णका जन्म हुआ था । परिषण्णकी पत्नी गम्मलदेवी जिनभक्तिमें अचिमब्बे तुल्य कही गई हैं । बम्मलदेवीके पिता प्रधानदण्डाधिप मरियाणे द्वि० थे और उनकी मा जक्कवे थीं । दंडनाथ भरत उनके चाचा थे, उनके इष्टदेव भ० पार्श्वनाथ थे । परिषण्ण वासुपूज्य सिद्धान्तदेवके शिष्य थे । उन्होंने आहवमल्लसे भीषण युद्ध करके शत्रुसेनाको नष्ट कर दिया । नरसिंह-देवके लिये उन्होंने उस रणमें अपना शीश ही उत्सर्ग कर दिया । इसपर सम्राट् प्रसन्न हुये और उन्होंने शान्तियण्णको निर्गुंडनाडमें करिगुड ग्राम भेंट देकर उन्हें उसका शासक नियत किया।[1] जब शान्तियण्ण शासनसम्पन्न होगये तो उन्होंने नीतिपूर्वक दुष्टोंका निग्रह और सज्जनोंका संरक्षण किया । करिगुण्डमें उन्होंने एक सुंदर जिनालय निर्माण कराया । दण्डनायक शान्तियण्णके गुरु वासुपूज्य सिद्धान्तदेवके शिष्य श्री मल्लिषेण पंडित थे । उक्त मंदिरकी व्यवस्थाके लिये शान्तियण्णने उनको भूमिदान दिया था । उस अवसरपर मल्ल गौड और अन्य प्रजाजनने भी उक्त मंदिरके लिये दान दिया था।[2]

ईश्वर चामूप—

ईश्वर चामूप भी नरसिंहदेवके दण्डनायक थे वह महाप्रधान सर्वाधिकारी और सेनापति दण्डनायक एरयङ्गमय्यके पुत्र थे । ईश्वर चमूपतिने तुमकूर तालुकमें मन्दार पर्वतकी बस्ती (मंदिर) का जीर्णो-

---

1-इका०, भा० ५ पृ० १७५ 2-मेजै०, पृ० १४६

बल्लाल द्वि०के दंडनायक—

सम्राट् बल्लाल द्वितीयके शासनकालमें पुन दण्डाधिपोंमें चारित्र्य और पराक्रम, धर्म और देशकी उन्नतिमें अग्रणभूत हुआ। दंडाधिप रेचमय्य भरत और बाहुबलि बूचिराज, चन्द्रमौलि नाग देव महादेव कम्मट माचय्य अमृत और ऐचन जैनधर्मके अनन्य उपासक वीर थे। दंडनायक भरत और बाहुबलिका वृत्तान्त पहले लिखा जा चुका है।

रेचमय्य—

दण्डाधिप रेचमय्य पहले कलचूरीवंशके राजाओंके सेनापति थे, यह भी पाठक पढ़ चुके हैं। उपरान्त होयसल नृप बल्लाल द्वितीयके सेनापति होगये थे। वह महा प्रचंड दंडनायक थे और जनताको प्रिय होनेके कारण "वसुधैक बान्धव" कहलाते थे। वह इतने दान शील थे कि लोग उनको साक्षात् कल्पद्रुम समझते थे। उन्होंने आसुंदि, आरसीकेरी और श्रवणबेलगोलामें जिनमंदिर और जिनप्रतिमायें स्थापित की थीं, यह पहले लिखा जा चुका है। दण्डनायक श्री गङ्गराजने श्रवणबेलगोलाके पास जिननाथपुर नामक ग्राम बसाया था। रेचमय्यने उस ग्राममें मनाभिराम शान्तिनाथ बस्ती नामक जिन मंदिर निर्माण कराया था जो आज भी देखने लायक है।

बूचिराज—

दण्डनायक बूचिराज सम्राट् बल्लालके राजकालमें उनके सन्धि-वैग्रहिक मंत्री और सेनापति थे। वह राजनीतिज्ञ ही नहीं साहित्यज्ञ भी थे। वह संस्कृत और कनड़ दोनों भाषाओंके ज्ञाता थे और

## सामन्त गोयीदेव—

नरसिंहदेवके सामन्तोंमें सामन्त गोयीदेव प्रसिद्ध थे। वह सामन्त आहवमल्लकी सन्ततिमें सामन्तमल्लके सुपुत्र थे। हुलियेरपुरका शासनाधिकार उन्हें प्राप्त था। उनकी पत्नी शान्तले उदारमना थी। उन्होंने जिनश्रीधर्म, महेश्वरागम, सद्वैष्णवाश्रित और बौद्धागमको आश्रय दिया था। उनके गुरु देशीयगणके चन्द्रायणदेव थे।[1] गोयीदेवकी पत्नी सिरियादेवीके भी गुरु चन्द्रायणदेव थे, जिनके उपदेशसे उन महिलाने हुलिपुरके जिनमंदिरमें जिनप्रतिमा प्रतिष्ठित कराकर विराजमान की थीं।[2] गोयीदेवकी एक अन्य पत्नी महादेवी नायकीर्ति भी थी, जिनका स्वर्गवास जब सन् ११६०में हुवा तब गोयीदेवने हेग्गेरेमें उनका स्मारक 'चैण्णपार्श्व बसति' निर्मापित किया था। इस मंदिरके लिये उनके पुत्र चिट्टिदेवने भूमिदान दिया था। चिट्टिदेवके गुरु माणिकनन्दि सिद्धान्तदेव थे।[3] गोयीदेव 'विनुत श्री-जैन-मार्गी-स्थगित गुण कलालापन उद्यत् प्रताप थे।' नोलम्ब महारानी श्रीदेवीकी सहायता करके उन्होंने उनके शत्रुओंको कैद कर लिया था। वह ऐसे वीर थे कि वह खाली हाथ ही शत्रुसे जुझ पड़े थे और मुष्टिप्रहारसे ही उसके छक्के छुड़ा दिये थे। तबहीसे उनका नाम 'वीर-तलप्रहारी प्रसिद्ध होगया था। चालुक्य नृप आहवमल्लके शिविरमें वह इस बहादुरीसे लड़े कि लोग उन्हें 'दोहङ्क-बडिव' कहने लगे।[4] निस्सन्देह वह धर्म और कर्म—दोनों क्षेत्रोंमें शूरवीर थे।

---

१-२-मेजै०, पृष्ठ ९४ व २६८ ३-मेजै०, पृ० ९४ ४-इका०, भा० ५ (१) पृष्ठ १३०

**नरसिंह प्र०के दंडनायक—**

सम्राट् नरसिंह प्रथमके शासनकालमें पुनः दण्डाधिपोंका आधिक्य और प्राबल्य, धर्म और देशकी उन्नतिमें कारणभूत हुआ। दंडाधिप रेचमय्य भरत और बाहुबलि बूचिराज, चन्द्रमौलि नाग देव महादेव कम्मट माचय्य अमृत और ऐचम जैनधर्मके अत्यन्त उपासक वीर थे। दंडनायक भरत और बाहुबलिका वृत्तान्त पहले लिखा जा चुका है।

**रेचमय्य—**

दण्डाधिप रेचमय्य पहले कलचूरीवंशके राजाओंके सेनापति थे यह भी पाठक पढ़ चुके हैं। उपरान्त होयसल नृप नरसिंह प्रथमके सेनापति हो गये थे। यह बड़े प्रचंड दंडनायक थे और जनताको प्रिय होनेके कारण "वसुधैक बान्धव" कहलाते थे। यह इतने दान शील थे कि लोग उनको साक्षात् "कल्पद्रुम" समझते थे। इन्होंने मागुडि, आरसीकेरी और श्रवणबेलगोलमें जिनमंदिर और जिनप्रतिमायें स्थापित की थीं, यह पहले लिखा जा चुका है। दण्डनायक श्री गंगराजने श्रवणबेलगोलके पास जिननाथपुर नामक ग्राम बसाया था। रेचमय्यने उस ग्राममें नयनाभिराम शान्तिनाथ बस्ती नामक जिन मंदिर निर्माण कराया था जो आज भी देखते बनता है।

**बूचिराज—**

दण्डनायक बूचिराज सम्राट् नरसिंहके राज्यकालमें उनके सन्धि-वैग्रहिक मंत्री और सेनापति थे। यह राजभक्त ही नहीं साहित्यमणि भी थे। यह संस्कृत और कनड़ दोनों भाषाओंके ज्ञाता थे और

सामन्त गोयीदेव—

नारसिंहदेवके सामन्तोंमें सामन्त गोयीदेव प्रसिद्ध थे। वह सामन्त आहवमल्लकी सन्ततिमें सामन्तमल्लके सुपुत्र थे। हुलियेरपुरका शासनाधिकार उन्हें प्राप्त था। उनकी पत्नी शान्तले उदारमना थी। उन्होंने जिनश्रीधर्म, महेश्वरागम, सद्वैष्णवाश्रित और बौद्धागमको आश्रय दिया था। उनके गुरु देशीयगणके चन्द्रायणदेव थे।[1] गोयीदेवकी पत्नी सिरियादेवीके भी गुरु चन्द्रायणदेव थे, जिनके उपदेशसे उन महिलाने हुलिपुरके जिनमंदिरमें जिनप्रतिमा प्रतिष्ठित कराकर विराजमान की थीं।[2] गोयीदेवकी एक अन्य पत्नी महादेवी नायकीति भी थी, जिनका स्वर्गवास जब सन् ११६०में हुवा तब गोयीदेवने हेगेरेमें उनका स्मारक 'चैण्णपार्श्व बसति' निर्मापित किया था। इस मंदिरके लिये उनके पुत्र बिट्टिदेवने भूमिदान दिया था। बिट्टिदेवके गुरु माणिकनन्दि सिद्धान्तदेव थे।[3] गोयीदेव 'विनुत श्री-जैन-मार्ग-स्थगित गुण कलालापन उद्यत्-प्रताप थे।' नोलम्ब महारानी श्रीदेवीकी सहायता करके उन्होंने उनके शत्रुओंको कैद कर लिया था। वह ऐसे वीर थे कि वह खाली हाथ ही शत्रुसे जुझ पड़े थे और मुष्टिप्रहारसे ही उसके छक्के छुड़ा दिये थे। तबहीसे उनका नाम 'वीर-तलप्रहारी प्रसिद्ध होगया था। चालुक्य नृप आहवमल्लके शिबिरमें वह इस बहादुरीसे लड़े कि लोग उन्हें 'द्रोहक्क-चडिव' कहने लगे।[4] निस्सन्देह वह धर्म और कर्म—दोनों क्षेत्रोंमें शूरवीर थे।

---

१–२–मेजै०, पृष्ठ ९४ व २६८ ३–मेजै०, पृ० ९४ ४–इका०, भा० ५ (१) पृष्ठ १३०

माता एचलदेवी थीं। उनके ज्येष्ठ भ्राता मसणिसेट्टि थे। मीमय स्वयं पेर्मादिके पुत्र थे। मारिसेट्टिने द्वारासमुद्रमें ऐसा उत्तुंग जिनालय बनवाया था कि मानो वह विश्वकर्माकी कृति हो। उनके पुत्र गोविन्द हुए जिन्होंने मुगळी नामक स्थानमें एक जिनमंदिर बनवाया था। उनके दो पुत्र चिट्टिसेट्टि और नकिसेट्टि हुए जो गुरु वासुपूज्यके शिष्य थे। इस प्रकार दण्डनायक पेर्मादिकी सन्तान जैनधर्मोत्कर्ष करनेमें अग्रसर हुई। वह स्वयं म अजितसेनके शिष्य थे। शासनके शिलालेख में १ १ ० में उन्हें "जिनेन्द्रपूजाविधान पात्रदानसमुद्दित प्रमाद पुरुषम् और परमतत्व भागतत्व भव्य विवेक श्रीमान् महामन् पेर्मादि" कहा है। उनके वंशको "निखिलगुणगण विचारविमलमनो" और "उभयभाषासार" से मंडित किया है। उन्हींके वंशमें मरताय नामक दण्डनायक भी हुये थे। मुगळीके जिनालयके लिये उन्होंने दान दिया था। वह लोकप्रसिद्ध और जिनेन्द्रधर्मवारिनिधि सरोजिनी प्रमदराग विवर्द्धन राजहंस थे। उन्होंने समाधिमरण किया था।

**दंडनायक चन्द्रमौलि और आचलदेवी—**

सम्राट् बल्लालके एक अन्य मुख्य सेनापति दंडनायक चन्द्रमौलि थे। उनके पिता शम्भुदेव और माता अक्कब्बे थीं। चन्द्रमौलि भरतशास्त्र आगम न्याय व्याकरण उपनिषद्, पुराण नाटक और काव्यशास्त्रमें विख्यात थे। वह ब्राह्मणके पुत्र और शैवधर्मानुयायी थे। उनकी पत्नी आचियक्कदेवी साक्षात् गंगादेवी ही थीं। शायद उन्हें गंगादेवी इसलिये कहते थे कि वह कवि भी थीं। वह जिनेन्द्र

१–एक. भा ५ पृ ११ २–मेजै पृ १५

उभय भाषाके कवि भी थे। उनकी धर्मपत्नी साव्वले थीं, जिनके चाचा दहाधिप मरियाणे और भरत थे। साव्वले अतिशय रूपवान् और पतिभक्तिपरायण रमणी थीं। उन्हें जिनपूजा और अभिषेकका उत्सव करने एवं दान देनेमें आनंद आता था। आखिर वह मंत्रिमण्डलाचार्य बूचरसकी अनुगामिनी थीं, जिन्हें स्वयं जिनपूजा और अभिषेक रचाने एवं मुनियोंको दान देनेका चाव था। वह आङ्गिस गोत्री स्वयं कलिकाल अङ्गिरस कहे गये हैं। चतुर्विधि पाण्डित्यमें मंडित वह वाचक वाचस्पति थे। सिद्धान्तका अर्थ करनेके लिए अशेष ज्ञानी थे। शायद 'तत्त्वार्थसंग्रह' नामकी इनकी कोई रचना भी थी। लोकके लिये वह 'अनिमित्त बान्धव' थे।[1] नंदिसंघ अरुङ्गल अन्वयके आचार्य श्रीपालत्रैविद्यदेवके शिष्य वासुपूज्य उनके गुरु थे। उनसे ही उन्होंने सकल शास्त्रका अध्ययन किया था। सन् ११७३ में जब बल्लालनृपके वर्षगांठ उत्सवके समय उनका राज्याभिषेक हुआ, तब बूचिराजने मारिकलि नामक स्थानपर 'त्रिकूट जिनालय' बनवाकर उसको वह ग्राम भेंट कर दिया था।[2]

पेम्माडि—

दण्डनायक पेम्माडि (हेम्माडि) बल्लालनृपके तन्त्रपाल ( Suptd of Ceremonies ) अधिकारी थे। उन्होंने कोङ्गल्वादि सामन्तोंको बुलाकर सम्राट्का राज्याभिषेक सालेमें कराया था—राजसिंहासन प्राप्त करनेमें बल्लालको उनसे विशेष सहायता मिली थी। वह मणिहार मारिसेट्टिके वणिकवंशमें जन्मे थे। मारिसेट्टिके पिता भीमय और

---

१–इका०, भा० ५ (HN 119) पृ० ३५ २–मजै०, पृष्ठ १४९

मौखिक जैनधर्मको उन्नत बनानेमें सक्रिय भाग लिया था।

दण्डनायक नागदेव—

नरसिंहप्रथमके जैन मंत्रियोंमें नागदेव भी उल्लेखनीय राजमंत्री थे। उनका जन्म एक प्रसिद्ध कुलमें हुआ जिसमें राजकर्मचारी परम्परासे होते आये थे। दण्डनायक नागदेवके पिता बम्मदेव भी राजमंत्री थे। नागदेव सम्राट् नरसिंहके पट्टनस्वामी थे और जिन चैत्योंके संरक्षक थे। उनकी पत्नी चन्दव्वे पट्टनस्वामी मल्लिसेट्टि और उनकी पत्नी माचवेकी पुत्री थी। उनके पुत्र पट्टनस्वामी मल्लिदेव हुए। मंत्री नागदेवने कमठ पार्श्वदेव बस्तिके सामने शिलाकुट्टिम और रङ्गशाला बनवाई थी। उनके गुरु बेलगोलके महामण्डलाचार्य श्री नयकीर्ति सिद्धान्तचक्रवर्ती थे। जब शक सं० १ ९० वैशाख शुक्ल १४को नयकीर्तिजीका समाधिमरण हुआ तो उन्होंने उनकी निषद्या बनवाई। श्रवणबेलगोलमें उन्होंने नागसमुद्र नामक सरोवर और एक उद्यान भी निर्माण कराया था जिनकी आमदनीका उपयोग गोम्मटदेवके अष्टविध पूजनमें किया जाता था। किन्तु नागदेवका सबसे बड़ा धर्मकार्य तो अद्वितीय संस्कृतिका केन्द्र 'नगर जिनालय' स्थापित करना था। इसके लिए उन्होंने भूमिदान दिया था। इस जिनालयके संरक्षक सेट्टि और मुम्मुरिदण्ड पराक्रमी बेलगोल व्यापारी थे।

---

१—जैशिसं पृ० २५८ व २११ नागदेव दण्डाधिपति वणिकोंके गृहस्थ प्रतीत होते हैं क्योंकि उनके नामके साथ 'देव' और इनके पदोंका प्रयोग हुआ है; जब कि इनके श्वसुर 'सेट्टि (सेठ) कहे गए हैं। अतः उनका वणिक होना स्पष्ट है और उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह किया था भी स्पष्ट है।

भगवानकी अनन्य भक्त थीं–अर्हत्परमेष्ठीके अभिषेक–जल (गंधोदक) से वह पवित्रीकृत थीं। उनका पितृकुल जैनधर्मानुयायी था। मासवाडि नाडुम प्रसिद्ध क्षत्रिय श्रावक शिवेयनायक शासनाधिकारी थे, जिनकी पत्नी चन्दव्वेकी कोखसे बम्मदेव हेग्गडेका जन्म हुआ था। बम्मदेव जिनपति–पादभ्रमर कहलाते थे। उनके भाई चावेयनायक और बहन कालव्वे थीं। उनकी दूसरी बहन आचलदेवी मासनाडीके शासक हम्माडिदेवको प्रिय थीं। उनके भाई सोवण नायक थे जिनकी पत्नी माचव्वे थीं। उनके पुत्र बम्मेय नायकका विवाह वणिकरत्न मल्लिसेट्टि और उनकी पत्नी माचवे सेट्टिकव्वकी पुत्री दोचव्वेसे हुआ था। उनके लघुभ्राता मार थे और बहनें आचलदेवी एवं चन्दव्वे थीं। आचलदेवीका मातृपक्ष इसतरह पूर्णत जिनेन्द्रभक्त था। उनके कुटुम्बमें कई अन्तर्जातीय विवाह हुये थे। 'ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंमें परस्पर विवाह सम्बन्ध होते थे,' यह बात उनके उदाहरणसे स्पष्ट है। चन्द्रमौलि यद्यपि शैव थे, परन्तु वह अपनी धर्मपरायण पत्नीके जिनधर्म विषयक कार्योंमें प्रसन्नता पूर्वक भाग लेते थे। आचलदेवीके गुरु श्री बलचन्द्राचार्यके शिष्य आचार्य नयकीर्ति थे। उनके उपदेशसे आचलदेवीने श्रवणबेलगोलमें श्री 'पार्श्वनाथ बस्ति' नामक जिनमंदिर निर्माण कराया था। उनके पति चंद्रमौलिने वीर बल्लालदेवसे बम्मेयहल्ली नामक गाव प्राप्त करके उस मंदिरके लिये दान किया था।[१] आचलदेवीकी प्रार्थनापर बल्लालदेवने बेक्क नामक ग्रामका दान गोम्मटदेवकी पूजाके लिए किया था।[२] इसप्रकार शैव होते हुये भी चन्द्र-

१–इका०, भा० २ पृ० १३५ व इका०, भा० ५ पृष्ठ १९२.
२–अैंशिस०, पृ० २०८

प्राप्त था। उनके पिताका नाम हरियम सेट्टि था और उनकी माता सुगाव थी। उनके तीन छोटे भाई थे मसण्ण और कसवरस थे, अमृत वहमाय सर्वाधिकारी महापासम (Master of the robes) और विरुदनमोलदिराणम (Master of the company of the titled) थे। उनका जन्म सोमकुण्डियें हुआ था जो बलात्कृतकी राजधानियोंमेंसे एक थी। श्री जिनचन्द्रके शिष्य नयकीर्ति सैद्धान्तिक उनके धर्मगुरु थे। उन्होंने अपने तीनों भाइयोंके साथ सन् १२ ३ में भाकनुरी नामक स्थानमें पक्षादि जिनालय नामक जिनमंदिर निर्माण कराया था। उसमें शान्तिनाथ भगवानकी प्रतिमा विराजमान करके उन्होंने स्वयं ही नायकों नागरिकों और किसानोंके समक्ष जिनन्द्रकी अष्टप्रकारी पूजा और मुनियोंके आहारदानके लिए भूमिका दान दिया।

**दंडनायक ऐचण—**

बलात्कृतक सन्निवेशमें इक मंत्री दंडनायक एचण भी जिनन्द्रभक्त थे। इन्होंने सन् १२ में एक सुन्दर और उत्तंग जिनालय निर्माण कराया था। उस मंदिरकी समानताका कोई भी दूसरा मंदिर बलात्कृतिनाडभरमें नहीं था। इस मंदिरके अस्तित्व और सांस्कृतिक बाताबरणने उस क्षेत्रको महातीर्थ कोपणके समान जैनधर्मका केन्द्र बना दिया था।

**माधव दण्डनाथ—**

सम्राट् नारसिंह तृतीय (सन् १२५४–१२९१ ई.) के

दण्डनाथ महादेव—

दण्डनाथ महादेवका उदय भी उस कुलमें हुआ जिसमें राज कर्मचारी होते आए थे। उनकी पत्नी लोकलदेवी थीं, जो जिनेन्द्र भक्तिमें अत्तिमब्बेके समान थीं। उनके गुरु क्राणरगण तित्रिकगच्छके आचार्य कुलभूषण त्रैविद्य विद्याधरके शिष्य सकलचन्द्र भट्टारक थे। दण्डनायक महादेवने सन ११९८ में उद्धरेमें एक सुन्दर मंदिर 'एरग जिनालय' निर्माण कराया था। उस मंदिरके लिये उन्होंने महामण्डलेश्वर एकरस एवं अन्य राजकर्मचारियोंके समक्ष भूमिदान भी दिया था। उनके साथ पट्टणस्वामी सेट्टि और अन्य नागरिकोंने इस जिनालयके लिए दान दिया था। महामंडलेश्वर एकरस भी इस पुण्यकार्यमें किसीसे पीछे नहीं रहे—उन्होंने भी दान दिया।[1] इस-प्रकार दण्डनाथ महादेवके निमित्तसे जैनधर्मकी प्रभावना विशेष हुई थी।

दंडनायक कम्मटमाचय्य—

सन् १२०० ई० में महाप्रधान दंडनायक सर्वाधिकारी, तंत्रपाल कम्मट माचय्य थे। हम लिख चुके हैं कि उन्होंने कुम्बेयनहल्लिके पटवान्निमल्ल जिनालयके लिये अपने श्वसुर मल्लय्यके साथ तेलके कोल्हूओं परका टैक्स भेंट किया था।[2]

दंडाधिप अमृत—

सम्राट् बल्लालके शासनकालके अन्तिम पादमें दंडनायक अमृतका भी उल्लेख मिलता है। उनका शूद्रवर्ण उस समयकी सामाजिक उदारताका द्योतक है। शूद्र होते हुये भी उन्हें दंडनायकका उच्च राज्यपद

१—मजै०, पृ० १५१　२—मेजै०, पृष्ठ १५१-१५३

श्री शान्तिनाथ जिनमंदिर बहुत जीर्ण हो रहा है उसने उसका जीर्णोद्धार कराया और उसकी शिखिरपर स्वर्ण कलश चढ़ाये । शक सं० ११७० में उसके लिये भूमिदान भी दिया । शान्त जिनेन्द्र शासनके प्रभावक और कुतीर्थोंको नष्ट करनेवाले मान गये थे । इसीलिये वह शासनमें भव्यों द्वारा प्रशंस्य कहे गये हैं ।

केतेय दण्डनायक—

वीर बल्लाल तृतीयके शासनकालमें केतेय दण्डनायक जैनधर्मके अनन्य उपासक थे । वह महाप्रधान, सेनापति और सर्वाधिकारी पद पर आसीन थे । सन् १३१२ ई० में केतेय दण्डनायकने परेनाडुमें कोप्पुगाम नामक स्थानको जिनमंदिरके लिए कान्नतूर और एक अन्य ग्रामका राजकरका दानपत्र किया । यों यह पहले लिखा जा चुका है ।

नायक रामदेव—

सन् ११८९ ई० में वीर बल्लालदेवके कुमार सोमेश्वरदेवके प्रधान हिरिय माणिक्य भण्डारि श्री रामदेव नायक भी जैनधर्मके भक्त थे । रामदेव नायकके समक्ष श्रवणबेलगोलके आचार्य नयकीर्तिदेव व्रतीके व्यापारियोंको यह शासन दिया था कि वे सामानके लिए आठ हग का टैक्स दिया करेंगे—वे और कोई टैक्स नहीं देवेंगे । ये व्यापारी खण्डलि और मूलभद्रके वंशज जैन धर्मानुयायी थे ।[1] संभवतः इन्हीं रामदेव नायकने कुवर गङ्गवाडीमें दिप्पिगूरके सन्निवेश सोमनाथ

---

१—जैशिसं पृ० ४१४–४१५ व इका० भा० (अर्सिकेरे ११) पृ० २४० मध्ये पुष्कर जिनेन्द्रार्चन शान्तप्पाय मारिने कुमीन–पान– केतन्–पचेन बम–मासके ।

२—मेजै पृ० १५१ ३—जैशिसं पृ० २५१

शासनकालमें ही संभवत दण्डनायक मादण ( माधव ) और जैनधर्म साक्षक चोप्पण हुये थे।[1] वह श्री कोपणतीर्थके निवासी थे। उनके पिता एम्मेयर पृथीगौड और माता मलौव्वे थी। चोप्प रायराजगुरु मण्डलाचार्य श्री माघनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीके प्रिय शिष्य थे। उन्होंने अनेक मत उपवास करके श्री चतुर्विंशति तीर्थंकरकी एक प्रतिमा प्रतिष्ठित कराकर उस मदिरमें विराजमान की जिसे मादण दण्डनायकने निर्माण कराया था। दण्डनायक मादण ( माधव ) श्री मूलसघ देशीयगणसे सम्बन्धित थे।[2]

## सेनापति शान्त—

सम्राट् सोमेश्वरदेवके एक प्रख्यात् सेनापति श्री शान्त भी जैनधर्म प्रभावनाके लिये अद्वितीय थे। वह विजयण्ण मत्रीके गोत्रमें अग्रगण्य थे।* श्रवणबेलगोलके शिलालेख ( न० ४९९ ) में उनकी कीर्तिका विशद वर्णन है। वह सेनानाथ शिरोमणि, बन्दिजनचिन्तामणि और जिनमदनसमूहाधार-सार कहलाते थे। उनकी भार्याका नाम भोगव्वे था। उनके दो पुत्र (१) काम, (२) और सात उन्हींके समान धर्मवीर थे। उनके गुरु मूलसघ देशीगण पुस्तकगच्छ कोण्ड कुन्दान्वयके श्री माघनन्दि भट्टारक थे। शान्तके पिता सोवरस भी भ० माघनन्दिके शिष्य थे। दण्डनायक शान्तने सुना कि मनलकेरेका

---

१-मेजै०, पृ० १८१-१८२ २-कोपण०, पृ० ११

* सभवत यही वह महापराक्रमी विजयण्ण थे जिन्होंने सन् ११९६ में सम० चन्द्रमभट्टेश्वसे कुछ भूमि खरीदकर गोम्मटदेवकी नित्य पूजाके लिए बीस फूलोंकी मालाओंके वास्ते दान की थी।

—इका०, मा० २ पृ० १०१

गया था। वह ब्रह्मपद्म जिनालय में वन्दन-वन्दना करने गया। वहाँ आचार्य शान्तिदेवसे उसने धर्मोपदेश सुना जिससे प्रभावित होकर वह धर्मकर्म करने लगा। उसकी भार्या शान्तलिका पर्व भक्त। दासगौड और रामगौड गुरु शान्तिदेवके पास पहुँच और जिनेन्द्र पार्श्वकी पूजाके लिए दान दिया।

हमाड चट्टय्य—

सन् ११७२ ई० में जब हरनाथ बूचिराजने मानिकदिमें त्रिकूट जिनालय बनवाया तो उसके लिए हेमाड चट्टय्यने विवाह गृह करें और कोल्हु पर कमलवाड़ा देकर दानमें दिया था।

मल्लिसेट्टि—

सन् ११२० ई० में बम्मावाडे (एडासे) में त्रिभुवनमल्ल अमरक राज-होयसल-सेट्टि रहते थे। त्रिभुवनमल्ल सेठ बम्मिसेट्टिके पुत्र मल्लिसेट्टिको भी अमरकराज होयसल-सेट्टि की उपाधिसे विभूषित किया। मल्लिसेट्टि धर्मिष्ट श्रावक थे। उन्होंने समाधिमरण किया तो उनकी पत्नी चट्टिकब्बेने उनकी निषधिका बनवाई थी। चट्टिकब्बे जैनधर्मप्रभावक रमणी थी—वह निरन्तर चारों प्रकारका दान दिया करती थी। उसके पिता और माताके नाम क्रमशः हुलम्मरस और सुगव्वे थे। मल्लिसेट्टि पहोसमें राजकर्मचारी पसाट विभागमें थे।

---

१ एपि०   १८१-८२   २-एपि०  मा ५ पृ १९-१९

१-मेडिन   पृ   २५१   चट्टिकब्बेके पिताके नामके स्थानमें भ्रमपूर्ण पर उनका धीमन्मय बताया है। यदि यह ठीक है तो यह चट्टिक उन्हीं सेट्ट मल्लिकी ब्याही थी।

कट्ट नामक स्थान पर उत्तम जिनालय बनवाया, जिसके स्वर्ण कलश आकाशसे बातें करते थे। बनवासीके मोत्तदनायक और द्रिण्टीयूर तथा मेगीमहत्मक गोड व प्रभूने श्री शांतिनाथकी अष्टप्रकारी पूजाके लिये मघचंद्र मुनिको दान दिया था।

साधारण जनतामें जैनधर्म—

यही नहीं कि हायसल राजवंश राजवंशज मन्त्रन और राज कर्मचारी ही जैनधर्मके प्रभावक रहे हों, बल्कि प्रजा भी 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति चरितार्थ कर रही थी। छोटे बड़े व्यापारी, शिल्पश्रमी और कृषक भी जिन धर्मकी शरणमें आकर पुण्य कार्योंको करते मिलते हैं। राज रमणियां ही नहीं साधारण महिलायें भी जैनोत्कर्षके लिये अपनी शक्तिको प्रगट कर रही थीं। जैन धर्मका यह सर्वमान्य व्यापक रूप निम्नलिखित कतिपय उदाहरणोंसे स्पष्ट है।

रसोइया जक्कय्यका दान—

सन् १०९५ में दुद्दमलदेव नामक एक सरदारका रसोइया जक्कय्य नामक था। वह अपने मालिकके चारित्रका अनुकरण करता था दुद्दमल्लने एक जिनमंदिर बनवाया। उसने ऐसा सुदृढ मंदिर बनवाया जो यावद्चन्द्रदिवाकर रहे। आज वही मंदिर सोमवार हुबलीमें 'वासवण्ण मंदिर' के नामसे प्रसिद्ध है और रसोइया जक्कके दानका स्मरण कराता है।[२]

तेली दासगौडकी धार्मिकता—

सन् ११३३ ई० में द्वारासमुद्रमें दासगौड नामक एक तेली

१–इका०, भा० ५ पृ० १९८   २–इका० भा० ५ पृष्ठ २६२

माई माचिसेट्टि भी दानशील थे। सन् ११७८ में इन्होंने 'नगर जिनालय' के लिये भूमिदान दिया था।

मुद्दगवुण्ड पेर्म्माडि बम्म गावुण्ड चिट्टिदेव और माद मसून सन् ११११ में शिमोगाके जिनमंदिरके लिए दान दिया था।

राजश्रेष्ठी पोय्सल सेट्टि—

सम्राट् विष्णुवर्द्धनके शासनकालमें राजश्रेष्ठी पोय्सल सेट्टि और नेमिसेट्टि प्रसिद्ध थे। यह पोय्सल नरेशके राजश्रेष्ठी थे और लोकमें फैले हुये जिनधर्मके सुदृढ़ समर्थक थे। ये गुणरत्नभूषण और जिन-शासन रत्नदीपको प्रकाशमान बनानेवाले थे। इनकी माता माचिकब्बे और शान्तिकब्बे बड़ी धर्मात्मा थीं। इन्होंने एक जिन मंदिर और नन्दीश्वर पट (मन्दारस्तक) बनवाया और श्री भानुकीर्ति मुनिसे दीक्षा लेकर आर्यिका होगईं। उक्त सेट्टियोंने इस अवसर पर भक्ति पूर्वक जिनपूजन किया और दान दिया

सन् ११२ में महावड्डव्यवहारी माचिसेट्टि और मादि-सेट्टि गोम्मटेश्वरके पास एक गद्देको पूजार्थ दान दिया था।

कृषक गौडका दान—

वणिकवर्ग ही नहीं कृषकवर्ग भी जिनधर्मको उन्नत देखनेके लिए उत्कंठित मिलता है। कृषक भी भक्त श्रावक थे। सन् ११५४ में होसकोटेमें परीक्षसेन भट्टारकने जब शान्तिनाथ बस्तिका जीर्णोद्धार कराया, तो बोप्पुन गौडके पुत्रोंने १० गद्याण देकर

---

१-२-मेजै पृ १७७ व १७९ ३—मैसूर पृ १९१

शक स० १०४१में एक मल्लिसेट्टि श्रवणबेलगोलके पट्टणस्वामी थे।

कवडमय्यसेट्टि—

यादव चक्रवर्ती वीर बल्लालदेवके राज्यमें श्रेष्ठि कवडमय्य और देवसेट्टि जैन वणिक थे। वे दोनों धर्मात्मा श्रावक थे। उन्होंने शांतिनाथ बस्ती, पट्टशाला, पूजा आदिके लिये रम्मटिगट्ट ग्रामका दान मूल सघ देशीगण वक्रगच्छके आचार्य बालचद्र मुनिको दिया था। ( BI 129 )

ब्राह्मणोकी धार्मिकता—

सन् १२४८ ई० में आदि गावुण्ड और कोण्हलके सब ही ब्राह्मणोंने द्रमिल सघके आचार्य वासुपूज्यके शिष्य मुनि पेरुमालेदेवको धर्मकार्यके लिये भूमिदान दिया था। उन्होंने पेरुमालुकन्ति (आर्यिका) के पुत्र मादय्यके लिये आदिगौड हल्लीमें एक जिनमदिर निर्माण कराया था।

माचिसेट्टि—

जैनी सेठ लोग उस समय धनके साथ २ विद्यालक्ष्मीके भी स्वामी होते थे—वह अपना धन धर्मकार्यमें खर्चते और बुद्धि कौशल जैन विद्याके प्रसारमें लगाते थे। सम्राट् बल्लाल प्रथमके शासनकालमें माचिसेट्टि और कालिसेट्टि नामके दो भाई थे। उनमें जेठे भाई माचिसेट्टि न्याय और व्याकरणके ज्ञाता, शास्त्रोंके व्याख्याता और शास्त्रीय सुभाषितमें निष्णात विद्वान् थे। वह पुण्य कार्योंमें अपना धन खर्चनेके लिये भी प्रसिद्ध थे। उनके समान ही उनके छोटे

१–जैशिस०, पृ० ३८३ २–इका०, भा० ५ (BI 138) पृ० १८०

मन जिनधर्ममें ही लीन रहता था। सन् ११९० ई० में सहम मालक और मुद्‌गकी पुत्री और नवकीर्तिकी शिष्या सान्तव्वेन सल्ले खनाव्रत ग्रहण किया था। सन् ११०६ में माकव्वेन महिलाओंकी छै आराधनाओंका आराधन करके समाधिमरण किया। सन् १२०६ ई में कमलसेनदेवकी शिष्या अव्वेन भी सल्लेखनाव्रत धारण किया था। मल्लगमुद्रकी पुत्री और प्रसिद्ध मलकी पत्नी अव्वेन भी सन् १ १२ में सल्लेखनाव्रत ग्रहण किया था। जिनसिद्धान्तके धर्मामृतको पीकर अव्वेने मिथ्यात्वको मनसे दूर कर दिया था और धर्मप्रणित मुक्तिमार्गको प्राप्त करनेकी अभ्यास उसने सर्वपरिग्रहका त्याग कर दिया। अपने देव जिनेन्द्रका स्मरण करके उन्होंने प्रतिज्ञा की और जिनधर्ममें अपनेको उत्सर्ग कर दिया। नासाग्रदृष्टिमें तन्मय होकर उन्होंने जिनागमका अर्थ सुनते हुए सन्यासमरण किया। मन्त्र भी यह आत्म-शरण। कायर होकर मरना उन महिलाओं तकको अभीष्ट न था। जैनधर्मका वीरमार्ग कार्यकारी हो रहा था

मंदिरोंकी विशेषता—

इस प्रकार हायूसल राज्यमें जिनधर्मका बहु प्रचार स्पष्ट है। जिनधर्मकी आत्मिक साधन उस समय मुनि और मंदिर बन हुए थ। यही कारण है कि प्रत्येक जिनभक्त जिनमंदिर निर्माण कराना और मुनियोंको दान देता हुआ मिलता है। उस समयके मंदिरोंमें विशेषता यह थी कि वह केवल मस्तक झिये पूजाकी वस्तु ही नहीं थे वस्तुतः वह जैनधर्मके केन्द्र थे। उनका प्रबन्ध किसी न किसी योग्य

१-मेज पृष्ठ १६ -१७१

हिरियकेरे तालाबके पासकी भूमि उक्त मंदिरके लिये लेकर प्रदान की।[1]

**महिलाओंकी धार्मिकता—**

पुरुषोंके साथ महिलायें भी धर्म कर्म करनेमें अग्रसर थीं। वे स्वयं धर्म पालन करती थीं और अपनी सन्तानको भी धर्मभावसे सन्कारित करती थीं। श्रीमती हर्य्यलेका उदाहरण उल्लेखनीय है। सन् ११७४ में इस धार्मिक महिलाने अपने पुत्र मूवय नायकको बुलाया और उससे कहा—वत्स! स्वप्नमें भी तुम मेरी चिन्ता न करना, बल्कि धर्मका ध्यान हमेशा रखना। हमेशा धर्म पालना, क्योंकि धर्म पालनसे ही सब प्रकारके सुख मिलते हैं। प्यारे मूवय नायक! मेरा तुमसे यही अनुरोध है। मूयीदेव! आओ एक जिन मंदिर निर्माण करायें, जिससे हम और तुम—दोनोंको अमित पुण्यकी प्राप्ति हो! अपने आप्तदेवके भक्तोंका सदा आदर करो और अपने छोटे चाचाका खयाल रक्खो। यह कहकर धर्मपरायण हर्य्यलेने जिन पतिका अभिषेक किया और अपने पाप धो डालनेके लिये गधोदक मस्तकसे लगाया। उन्होंने सन्यास धारण कर लिया। जिनेन्द्रके चरणोंमें बैठकर उन्होंने पंचनमस्कार मंत्रका उच्चारण किया और जिनेन्द्रभक्तिमें लीन हर्य्यलेने समाधिमरण किया। उन्हींके समान चन्द्रायणदेवकी शिष्या हरिहर देवीने भी समाधिमरण किया था[2]

**सल्लेखनाव्रत—**

जैन महिलायें धार्मिक जीवन तो विताती ही थीं, परन्तु अपना अन्त समय सुधारनमें भी सजग थीं। आत्मभावनासे पवित्र हुआ उनका

१–मैजै०, पृ० १८० २–मजै०, पृ० १६९–१७०

वादिस्वामी-विद्वान-प्रवर थे। माघनंदि सिद्धान्तोद्धारक थे। अभयचंद्र व्रतीश शब्द, न्याय, सिद्धांत, समय इत्यादि आगमोंमें निष्णात थे—यह षट्तर्क वाग्मिता विद्वत् प्रभाचन्द्रजीके प्रणेता थे और थे सिद्धान्तचक्र-वर्ती। श्रीपाल योगीन्द्रकी आज्ञा सब ही नरेश शिरोधार्य करते थे—उन्होंने न्यायशास्त्रके षट्दर्शनरूपी समुद्रको शोषण कर लिया था जिससे अगस्त्य भी हतप्रभ हो गया था। उनके शिष्य वासुपूज्य व्रतीन्द्र भव्यजनोंसे सेव्य सेवा धर्मके लिए प्रसिद्ध थे और उदारतामें स्वयं दानस्वरूप थे। वह भव्यजनोंको दीक्षा शिक्षा देकर उनकी रक्षा किया करते थे। इस लोकसभाके द्वारा ही वह ख्यातिशाली हुए थे। वर्द्धमान वाग-दम्भमल वादिराज देव ऐसे तर्कवादी थे कि ज्यों सूर्यके समक्ष चन्द्र निस्तेज होता है त्यों अन्य वादी उनके समक्ष निस्तेज होते थे। वह भवसर्वोद्धाभिमान अर्हन्मताम्भोनिधि और विमलवादि-राजेन्द्र थे।[2] विद्याके साथ ही जैनाचार्य और साधुधर्म व्रत और चारित्र पालनके लिए भी प्रसिद्ध थे। म० अजितसेनके अग्रपुत्र कलिमुग-गणधर मल्लिषेण मलधारिदेव दुर्द्धर तपोविभूति थे। कुमारसेन सैद्धान्तिक भी एक प्रसिद्ध तपस्वी थे। मुनिचन्द्र भट्टारक आचार्यके छत्तीस

---

१-इपि० भा० ५ (BI 188) पृष्ठ ८८

२-इपि० भा० ५ AK I (1 69) —

'श्रीपाल त्रैविद्य विद्यापतिपदकमलाराधनाप्तप्रबुद्धि ।
सिद्धान्तप्रमेयविचार-परिज्ञान् अनुपमलात् गुणमयेव ॥
दीक्षाशिक्षा-गुरुता-भ्रम बलि निपुण देवं भव्यलोकः ।
लोकं दाक्षिण्य प्रसिद्धकीर्ति विभवे वासुपूज्य व्रतीन्द्रः ॥'

३-इपि० भा० ५ पृष्ठ ४८ ४-इपि० भा० ५ पृ० १८१

विद्वान् निर्ग्रन्थ जैनाचार्यके आधीन था। वह ज्ञानदानके महाविद्यालय बने हुए थे। उनके साथ पट्टशालायें और दानशालायें भी थीं। जहां एक भक्त जिनमंदिर निर्माण करता, वहीं वह उसकी व्यवस्था और व्ययके लिये पर्याप्त दान भी देता था। गांवके गांव जैन मंदिरोंसे लगे हुये थे–कुछ राज कर भी मंदिरोंको प्राप्त थे और कुछ कर तो स्वयं आचार्यगण लगाकर वसूल और माफ करते थे।* मंदिरोंकी यह आमदनी जिनेन्द्रकी अष्टप्रकारी अर्चा, जीर्णोद्धार, मुनि दान और आहाराभय–भैषिज्य और ज्ञान दानमें व्यय होती थी। सब कोई इस देव द्रव्यको निर्माल्य तुल्य समझता था और उसे उसी काममें खर्चता था जिसके लिये वह उत्सर्ग थी। किन्हीं मंदिरोंकी व्यवस्था और प्रबन्ध खण्डलि और मानभद्र वंशके वणिकोंके आधीन थे। गोम्मटदेवकी पूजामें फूलोंके हार चढाये जाते थे। इसीलिये मंदिरोंके साथ तालाब और उद्यान भी बनाये जाते थे।

**मुनिगण—**

उस समयके जैन आचार्य और मुनिगण पूर्ण निर्ग्रन्थ-वृत्तिके पालक थे। वे दिगम्बर भेषमें रहते थे और मूलगुणोंका पालन करते थे। उनका सारा समय ज्ञान ध्यान और धर्मप्रभावनामें व्यतीत होता था। धार्मिक संस्थाओंकी व्यवस्था करते हुये भी अपने वीतराग गुण और आत्मभावको वे बढाते थे। जैन सिद्धान्त और लौकिक ज्ञानमें उनकी समता करना दुर्लभ था। चारुकीर्ति आचार्य कविगमक

* महामण्डलेश्वरों और राजगुरुओंसे युक्त मूल संघके गुरु समुदायने खाण, अभ्यागत कटकसे आदि कर माफ किये थे। (Ec II 150)

धर्मका उल्लेख भी हुआ है। उसमें जिन मुनियोंका विदित नाम सद्धर्मोद्धारक, एकत्वभावनाभावी उभयनय-समर्थी निरुपद्रवित, निरस्त निराकृत, चतु कषाय विनाशक, चतुर्विध-उपसर्ग गिरिवज्र रवि-तेरव समन्वित, पंचदश प्रमाद विनाश कर्ता, पंचाचार-वीर्याचार सहित षड्दर्शन मद भेदी षट्कर्म धारक, सप्त भय निरत अष्टांग-निमित्त कुशल, अष्ट विध ब्रह्मचर्य-सम्पन्न नव-विध-ब्रह्मचर्य पालक, दशधर्म धर्मे शान्त एकादश भावनाधारक और द्वादशांगके उपदेशक; द्वादश तप निरत द्वादशांग श्रुतविभाग-सुधाकर त्रयोदशाचार शील-गुण पर्यंकासन और सर्व जीवदया पालक लिखा है।[1] भारतियोंमें भी इसी प्रकारके धर्मका पालन करती हुई जनताका हित चाहती थी।

श्रावक धर्म—

श्रावकोंके लिये देवकी पूजा करना और गुरुओंको दान देना मुख्य धर्म था। प्रत्येक श्रावक और श्राविका निरन्तर जिन भगवान्‌का अभिषेक और पूजन करते हुए तथा मुनियोंको आहारदान देते हुए मिलते हैं। गुरुओंके मुखसे धर्मोपदेश सुनना शास्त्रोंका पठनपाठन करना भी गृहस्थोंका मुख्य धर्म था। प्रत्येक गृहस्थका कोई न कोई शिक्षागुरु और धर्मगुरु होता था। ये गुरु ही श्रावकोंके जीवनको एक आदर्श नागरिकका जीवन बनानेमें मुख्य कारण थे। गुरुओंकी निकटतामें अणुव्रतोंका पालन किया जाता था। श्रावककी ग्यारह प्रतिमाओंका भी उपदेश दिया जाता था; परन्तु इनका पालन किस

---

१—जैनशि० पृ० ११६

गुणोंसे युक्त पंचाचारका पालन करते थे।[1] गंडविमुक्त मलधारिदेवके चारित्रपालनके विषयमें कहा गया है कि ' वह भूलकर भी लौकिक कार्य सम्बन्धी एक शब्द भी नहीं कहते थे, उन्होंने कभी अपनी देही खुजलाई नहीं और दूसरोंको कष्ट न हो, इसका उन्होंने पूरा ध्यान रक्खा।"[2] इसप्रकार मुनिजन अपने जीवनको सार्थक बना रहे थे।

पंचकल्याणक आदि उत्सव—

धर्मप्रभावनाके अनेक कार्योंमें राजदरबारोंमें परवादियोंसे वाद करना, और जैनधर्मका ज्ञान फैलाना, धर्मोपदेश देना, जैन उत्सव मनाना मुख्य थे जैन उत्सवोंमें नित्य नैमित्तिक पूजनोत्सवोंके अतिरिक्त पञ्चकल्याणक महोत्सव मनानेका भी उल्लेख मिलता है। त्रिभुवन राजगुरु भानुचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती आदि आचार्यों व अनेक गणों और संघोंके आचार्यों, कलियुगके गणधर पचास मुनीन्द्रों व उनकी शिष्याओं आर्यिका ( कन्ति ) गौरश्री, सोमश्री, देवश्री, कनकश्री व शिष्योंके अट्ठाईस संघोंने एकत्रित होकर पञ्चकल्याणकोत्सव मनाया था। बड़े बड़े तपस्वी आचार्यों विद्वानों और संघके सब ही अङ्गोंको एकत्रित करके यह महान् उत्सव मनाया जाता था। आज कलकी तरह एक पण्डित महानुभावकी उपस्थितिमें यह महान् पुण्योत्सव सम्पन्न नहीं किया जाता था। यही कारण है कि इस प्रकारके उत्सवोंका विशेष उल्लेख नहीं मिलता है।

मुनिधर्म—

शक सं० १०९९ के शिलालेख ( नं० ११३ ) में मुनि-

१–इका०, भा० ४, पृ० १३२  २–इका०, भा० २, पृ० ४६  
३–जैशि सं०, पृ० २२६

स्वाध्य आधार धर्म कर्म था—जैनसंघमें जन्मत जातिका कोई महत्त्व नहीं था। जैनसंघ भक्तिधर्म और श्रावकधर्मको महत्त्व देता था—वह जातिको आगे स्थान नहीं रखता था। उसका चतुर्वर्ण रूप (१) मुनि (२) आर्यिका (३) श्रावक, (४) श्राविका था। जातिः जैन जीवनका उद्देश्य और साफल्य मोक्ष प्राप्त करनेमें गर्भित था। साधुवर्ग साक्षात् इस उद्देश्यकी सिद्धिमें त्यागी था; परन्तु श्रावकवर्ग अपनी शक्ति और सुविधानुसार मोक्षमार्गका उपासक होता था। उसका मुख्य कर्म धर्मके स्वरूपको सुनना और उसपर श्रद्धा करना था। यही कारण है कि जैन संघमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सबहीके लिये धर्मसाधन सुगम था। जैनाचार्योंके शिष्य किसान सेठी वर्ग, माली आदि शूद्र जातिके लोग भी थे और वे श्रावकके मुख्य धर्म देवपूजा और गुरूपासना निरन्तर पालन करते थे। सेनापति अमृत यद्यपि शूद्र जातिके रत्न थे, परन्तु वे जब राजधर्मधारी हुए थे और उन्होंने धर्मका यथाविधि पालन किया था। धर्म परिवर्तनके भी उदाहरण मिलते हैं। हाँ विवाह सम्बन्ध अपनी जातिके अतिरिक्त उच्च के तीन जातियों—वर्णों (ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य) में परस्पर होते थे।

---

१—इपी० क० भा० ६, पृ० १०

२—अमोघ ब्राह्मण क्षत्रियका विवाह मन्त्रिराजेश्वरकी पुत्री सोमलदेवीसे हुआ था। अमोघ ब्राह्मणकी बहन अक्कलदेवी देवनायक दण्डनायकसे ब्याही थी ये ब्राह्मण और जैन थे। (इपी० क० भा० २ पृ० ११५) क्षत्रिय मालदेवका विवाह मन्त्रिराजेश्वरकी पुत्री माचलदेवीके साथ हुआ था। (मेडि० जै० २५८) पहलेके परस्पर विवाहके इतिहासमें श्री मल्लिसेट्टि (वणिक) का विवाह कदम्बराज (क्षत्रिय) की कन्या पद्मलदेवीके साथ हुआ था। (मेडि० जै० पृ० १५१)

हद तक किया जाता था—यह ज्ञात नहीं। हां, सल्लेखनाव्रतका पालन संघका प्रत्येक वर्ग करता था। मुनिजन आराधनाओंकी आराधना करानेमें सहायक होते थे।

**संघ और गण—**

संघ व्यवस्था इस समय पूर्ववत् चल रही थी। निर्ग्रन्थाचार्य पहलेसे ही मठ और मंदिरोंमें रहने लगे थे—वे अरण्यवासी नहीं रहे थे, परन्तु उनमें और कोई शिथिलाचार देखनेको नहीं मिलता। मुनि संघ अनेक अन्तरभेदी संघो-गणों और गच्छोंमें बटा हुआ था परन्तु उनमें परस्पर ऐक्य था। बड़े २ उत्सवोंमें सब ही संघोंके आचार्य और साधु सम्मिलित होते थे। आचार्य, महामण्डलाचार्य और राजगुरुरूपमें विभक्त आचार्य संघके व्यवस्थापक थे, परन्तु प्रत्येक मंदिरका व्यवस्थापक एक आचार्य अलग होता था। संघोंमें मूलसंघ सर्वप्रधान था—उसके पश्चात् द्रमिल संघ और यापनीय संघ उल्लेखनीय थे। आर्यिकाओंके भी अपने २ संघ और गच्छ थे उनके गुरु प्राय आचार्य महाराज होते थे। इसी प्रकार श्रावक और श्राविकाओंका सम्बन्ध भी उनके गुरुके संघों और गच्छोंसे होता था। सर्वत्र दिगम्बर जैन धर्मका ही प्रचार था—श्वेताम्बर मत उधर देखनेको नहीं था।

**समाज व संघ व्यवस्था—**

तत्कालीन जैनियोंमें प्राचीन परम्पराके अनुसार समाज व

१—रत्नकरण्ड श्रावकाचार देखो। यह आत्मघात नहीं है और गुरुकी आज्ञाके नहीं किया जाता। मृत्युका अवश्यम्भावी होनेपर ही व्रत लिया जाता है।

और मुकम्मकी सन्ततिके वणिक प्रसिद्ध थे–वे जिनालयोंके संरक्षक थे। सत्य और शौच धर्मोंका निरन्तर पालन करते थे–सिंहके समान उनका पराक्रम था–अनेक बन्दरगाहोंसे नाना प्रकारका व्यापार करनेमें वे दक्ष थे–रत्नत्रय धर्मसे भूषित वस्तायके वणिक प्रसिद्ध थे। वे अपनी इच्छासे ही जिनमंदिरोंके लिये अपनी वार्षिक आमदनीमेंसे दान घोषित कर देते थे और प्रतिज्ञा करते थे कि आमदनीको छिपा वेंगे नहीं। व्यापारोंमें घोड़े हाथी मोती आदि लाते और राजाओंको बेचते थे। वे 'महा वड्ड-व्यवहारी' या 'वीर वणिज्यु' कहलाते थे। मलेयालके चौरारी प्रसिद्ध थे। यद्यपि वे होयसल राज्यमें रहते थे, परन्तु उनका सम्बन्ध राठौर मालव चक्र, कलिङ्ग आदि राजाओंसे भी था। वे इतने प्रभावशाली थे कि उन्होंने राठौर और होयसल राजाओंसे परस्पर सन्धि कराई थी। आसीकरीके पांचसौ वणिक स्वामी इनमें प्रधान थे।[1] शिलालेखोंमें उस समय अनाजके व्यापारियों कुम्भकारों सुनारों बजाजों सर्राफों आदिका उल्लेख मिलता है। कुछ लोग राज्यके मुद्रा (कम्मट) और कर विभागमें राजकर्मचारी भी थे और कोई कोई तो राजमंत्रीके पदपर नियुक्त थे। सारांश यह कि वणिकवर्ग उस समय साहसी धनसम्पन्न और पराक्रमी था। राजा और प्रजा द्वारा सम्माननीय था।

---

१–मैसूर इं० पृ० १५७ "अनेक गुणगणालंकृत मुकम्मत्र-विक्रम्-पंचसुरुणशुभ्यत्व-धीरसुशील पराक्रमाभिनवनेकसम्बोधि–बेकम पुरमन सम्मा व्यवहारक–कुम्भर विकसान्–सम्मत रत्नत्रयमे–वीरवेणाति–नामहत पवित्र वाणिजर॥" २ इण्डि० भा० १ पृ० १४४ ३–मैसू० पृ० १८१ ४ इण्डि० भा० ५ पृ० १५

विवाह समय वर नववधूको अगूठी पहनाता था । धार्मिक उदारता इतनी बढ़ी हुई थी कि जैनों, शैवों और वैष्णवोंमें विवाह सम्बन्ध होते थे । ब्राह्मण और क्षत्रियोंके भारद्वाज, काश्यप, सूर्यवंश आदि गोत्रोंका उल्लेख मिलता है । वैश्य भी अपने पूर्वजोंकी अपेक्षा मानभद्र या खडलि गोत्रके कहलाते थे । उस समय पंचम, चतुर्थ, सेतवाल आदि जातियोंका कोई उल्लेख नहीं मिलता है । जैन धर्म अपने उदार रूपमें मनुष्यमात्रका कल्याणकर्त्ता हो रहा था ।

## जैनी आदर्श नागरिक—

सब ही वर्णोके-ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैनी उस समयके आदर्श नागरिक थे। एक शिलालेखमें लिखा है कि "भव्यजन (जैनी) सत्यभाषी जैनाचारी जिनार्चनमें इन्द्रसे चौगुने, धन ऐश्वर्यमें कुबेरतुल्य, दान देनेमें विवेकशील-पात्रको दान देते, धनोपार्जनमें सबको सुखी रखते हुये आदर्श जीवन विताते थे।"[1] ब्राह्मण विद्यामें पारङ्गत थे-सरस्वती उनके कण्ठमें विराजमान थी।[2] क्षत्रिय रक्षक वीर थे। शासनाधिकार पाकर वह उद्दण्ड नहीं बने, बल्कि लोकोपकारी ही रहे। इसी कारण महाप्रधान जैसे सर्वोच्च राजपद पर आसीन दण्डनायक वसुधैक बान्धव और गरीबोंके रक्षक कहे गये हैं। दुष्टका निग्रह करना और सज्जनका संरक्षण करना उनका धर्म था। इसी प्रकार वणिक धनी और शूद्र स्पष्ट भाषाभाषी धर्म्मिष्ठ थे।

## वणिक और व्यापार—

उस समय वणिक वर्गका नैतिक आदर्श अपूर्व था। खडलि

---

१-इका०, भा० ५, पृ० १४१　२-इका०, भा० ५, पृ० १४२

प्रधान रहते थे। यह मन्त्रक शासनकार्योंमें स्वतन्त्र सहायक होते थे। जो होयसल राज्य एक जैन साधुके सहयोगसे अस्तित्वमें आया था, वह भला अपने शासन व्यवहारमें उदार और नीतिवान् क्यों न होता? इस समय सप्ताङ्ग युक्त राज्य माना जाता था। 'चन्द्रप्रभ पुराण' में सप्ताङ्ग (१) नृप (२) मंत्री (३) सहायक, (४) प्रदेश, (५) दुर्ग, (६) कोष और (७) सेना कहे गये हैं। होयसल राज्य भी इनसे पूर्ण था। इस सुराज्यका यह सुफल था कि कोई भी व्यक्ति होयसल राज्यमें चोर न था और न कोई महत्वाकांक्षी धर्म सीमाका उल्लंघन करता था। उपद्रव नहीं थे वहां और न थे रोग शोक। कोई रोषपूर्ण प्रभु न था और उपाधिकारी अथवा राजगण गुणसे अमर्यादित नहीं हुये थे। परिणामतः राष्ट्रकी उन्नति विशेष हुई थी—उसकी समृद्धि अपार थी। वहांके नगरोंमें मणि मोतीके प्रकाशसे आकाशमें इन्द्रधनुष पड़ जाता था और स्वर्ग ही वर्तता था वहां।

**जैनधर्मका प्रभाव—**

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनधर्मका बहु प्रचार होयसल राष्ट्रके निर्माणमें एक मुख्य कारण रहा। राष्ट्रकी समृद्धि और सदाचारमें जैन सिद्धान्तों और जैन गुरुओंका प्रभाव कार्यकारी हुआ। मर्यादा धर्मका नियमित पालन और निरामिष खानपान जैसे सात्विक भोजनने मानवोंके भावोंको विवेकपूर्ण और स्वभावको अनुपम बनाया था। देशमें कोई कामी न था और न कोई दुराचारी था। सीमा-

---

१-२-मेड्. पृ. १९९-२०० ३-एपी. इ. भा. ४-भा. २ पृ. ११
३-मेड्. पृ. १९० ४-एपि. भा. ५ पृ. १४७।

## सर्वहितके कार्य—

तत्कालीन होयसल राष्ट्र 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्तिको चरितार्थ कर रहा था। जब राजा जैन गुरुओंके पथ प्रदर्शनमें धर्मिष्ठ हो रहे थे, तब प्रजा क्यों न धर्मात्मा होती? जैनमत सघवादका समर्थक है। वह समिष्टिके हितमें ही सबसे बड़ा हित घोषित करता है। इसलिये राजासे लेकर एक साधारण नागरिक अपनी शक्तिको न छिपाकर जनहितके कार्योंको करता मिलता है—मंदिर, पाठशाला, दानशाला आदि ठौर २ पर खुले हुवे थे। नगरोंमें सुंदर उद्यान और मनोहारी तालाब नागरिकोंके मनोरञ्जनकी वस्तु थे यात्रियोंके विश्रामके लिये योजन-योजन (नौ मील) पर बाग-बगीचे बना दिये गये थे। सन् १२९० में दण्डनायक पेरुपालने मैलङ्गिमें जो विद्यालय स्थापित किया उसमें नागर, कन्नड, तिगुल (तामिल) और आर्य (महराठी) भाषाओंमें शिक्षा देनेका प्रबन्ध था। तेरहवीं शताब्दिमें कर्णाटकमें नागरी (हिन्दी) को शिक्षाकी व्यवस्था गौरवकी चीज है। लोग मार्गमें कुवे, तालाब, छत्र (धर्मशाला) और आहारदानशाला भी बनवाते थे।[1] इसप्रकार होयसल राष्ट्रमें सार्वहितके कार्य करना राजा और प्रजाका एक सामान्य धर्म होरहा था।

## सुराज्य व्यवस्थाके सुफल—

निस्सन्देह होयसल सम्राट् पूर्ण स्वाधीन थे, परन्तु वह राजनीतिका उल्लघन न कर जावें, इसलिये उनके राज्यसचालनमें सहायक मन्त्रिमण्डल रहता था। इस मण्डलमें सम्राट्, सम्राज्ञी और पंच-

१-मैकु० पृ० १७८

स्त्रियोंका व्यक्तित्व गौरवशाली था । उन्हें शास्त्राधिकार भी प्राप्त था और धर्म कर्म करनेमें भी वे स्वतन्त्र थीं । यद्यपि पतिभक्ति उनका आदर्श था परन्तु उसका अर्थ दासता नहीं था । महिलायें समाजमें निस्संकोच विचरण करती थीं—वे विद्या और कलामें निष्णात होती थीं । संगीत, वाद्य और नृत्यमें निपुण होना उस समय एक सभ्य महिलाके लिए आवश्यक था । राज्यशासनमें भी उनका हाथ था ।

वीरत्वका आदर्श—

रमणी रत्न वीराङ्गनाओंकी गोद्य गोदीमें लालित पालित सन्तान वीरत्वसे ओत-प्रोत थी । यही नहीं कि सेनापति विष्णु सदृश षोडश-वर्षीय युवक ही शौर्य और सैन्य संचालनमें अद्वितीय थे, परन्तु उस समय वीरत्व-गुण राष्ट्रके प्रत्येक व्यक्तिके लिये एक आवश्यक वस्तु थी । मामूली किसान और नगरका एक वीर वणिक भी अपने शौर्यको प्रगट करनेके लिए कटिबद्ध रहता था । वीरगति प्राप्त वीरके स्मारक वीरगल बनाये जाते थे । सबके सम्मुख यह आदर्श उपस्थित थी कि—

जितेन लभ्यते लक्ष्मी मृतेनापि सुराङ्गना ।
क्षणविध्वंसिनि काये का चिन्ता मरणे रणे ॥

रणमें यदि विजयी हुये तो लक्ष्मीकी प्राप्ति होगी और कदाचित् मृत्यु हुई तो सुराङ्गनाका भोग मिलेगा । काया तो एक क्षणमें विध्वंस होनेवाली है अतः रणमें मरण हो तो चिन्ता ही क्या है ! किन्तु यह होता था केवल शुद्ध निमित्त हित परिस्थितियोंके लिए । अतः विवेकपूर्ण यह वीरभावना राष्ट्रकी उन्नतिमें कारणभूत थी ।

१—भाषामें (१११) पृ० १२४ ।

प्रदेशमें पशु धनको उठा ले जानेके उल्लेख अवश्य मिलते हैं, परन्तु यह बाहरवालोंकी कृतिया थीं, जिनको दण्ड देनेके लिये नागरिक हरसमय तैयार रहते थे। वे परस्पर एक दूसरेको सहायता पहुचाते और सहयोगसे रहते थे।[1] धार्मिक असहिष्णुताका नाम नहीं था। जैन, शैव और वैष्णव एक ही घरमें साथ२ रहते थे।

**अहिंसा और शौर्य—**

अहिंसा धर्मका प्राबल्य था। शैव और वैष्णव मत भी जीव हिंसासे परहेज करने लगे थे-यज्ञ होते थे, परन्तु उनमें पशुबलि नहीं चढाई जाती थी। अजैन ब्राह्मण वेद और दर्शनके ज्ञाता एव मुजि यज्ञ और उपवीतसे रक्षित थे। अहिंसा धर्मके प्राबल्यने नागरिकोंको दयावान् और न्याययुक्त बनाया था—वे सेवाभावी और जनोपकारी बने थे। राजत्व और राष्ट्रके लिये अपने प्राण उत्सर्ग करने तकको लोग तैयार रहते थे। क्षत्रिय ही नहीं, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र भी शौर्य-पराक्रमसे रिक्त नहीं थे। प्रत्येकको अपना शौर्य प्रदर्शन करनेका अवसर प्राप्त था। जो स्वामीकार्यमें वीरगतिको प्राप्त होता था उसे लोग सम्मानकी दृष्टिसे पूजते थे और राज्यसे उसके उत्तराधिकारीको नि शुल्क भूमि मिलती थी।[2]

**महिला-महिमा—**

धर्म सग्राममें भाग लेनेके लिये होयसल राष्ट्रके 'पुरुष और स्त्री समानरूपमें उत्सुक रहते थे। महारानी बम्मलदेवी और चोलमहादेवीके द्वारा युद्धमें शत्रुमर्दनके उल्लेख मिलते हैं। निस्सन्देह उस समय

१-२-मेकु०, पृ० १७८

राष्ट्रने योगीके लिये योग और नागरिकके लिये रणमें वीरगति पाना जीवनसाफल्यका महापराक्रम माना था ।[1]

**वणिक वीर—**

व्यापारमें संलग्न धन कमानेमें मग्न वणिक भी इस पराक्रमसे प्रभावित थे–वह धन मदिराका प्याला फेंककर युद्धकी झकारमें मस्त हो जाते थे । निट्टूरमें गऊ वशको लुटेरे उठा ले चले। लोक माणिक सेट्टिने यह देखा, उनका भुजदण्ड फड़का–गऊओंकी रक्षा करते हुये वह सन् ११४७ ई० में वीरगतिको प्राप्त हुए ।[2] विक्किसेट्टिके पुत्रने भी पशुरक्षाके निमित्त अपने अमूल्य प्राण उत्सर्ग कर दिये[3] । जब वीर नरसिंहदेवका युद्ध रामनाथदेवरसुसे होरहा था, तब केम्बाल हरिगि सेट्टि प्रसिद्ध योद्धा होन्नयसे लड़े और वीरगतिको प्राप्त हुये[4]। निस्सन्देह उस समयके वीर वणिक कामविजयी अपार पौरुषके धारक साहसी होते थे[5] । यह था अहिंसा धर्मका चमत्कार !

**जैन केन्द्र—**

उस समय होयसल राष्ट्रमें यद्यपि जैन धर्मके गुरु ठौर ठौरपर विचरते हुये जनकल्याण कर रहे थे, परन्तु जैनधर्मके प्रमुख केन्द्रस्थान

---

१–'द्वाव् इमो पुरुषौ लोके सूर्य-मंडल-भेदिनौ,
परिव्राड् योग-युक्तश्च रणे चाभिमुखे हत ।'—मैक्रु० पृ० १७० ।

२–३–इका० भा० ५ पृ० ३२ ( हासन शि० न० १०८ ) व शि० ४ न० १०९ ।

४–इका० भा० ६ (Ch 206)

५–'जितमनोभवरूपन अपार पौरुष । विविधकला विलास भजन प्रभू बेह्लियदासि सेट्टि ॥' —आरसीकेरेशि० न० १

थे। इस प्रकार श्रवणबेलगोल होय्सल शासनकालमें जैनशिक्षा-दीक्षाका केन्द्र रहा था। उसकी मान्यता तीर्थ रूपमें होरही थी। मुमुक्षु अपना अन्त समयमें यहीं आकर सल्लेखनाव्रत लेते और इहलीला समाप्त करते थे। सेनापति गङ्गराज और हुल्ल द्वारा श्रवणबेलगोलमें विशेष धर्मप्रभावना हुई थी।

कोपण—

कोपण भी उस समय एक महातीर्थ माना जाता था। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि कोपण एक छोटी सी पहाड़ीपर स्थित था। मौर्यकालके ध्वंसावशेष यहाँ मौजूद थे। चीनी यात्री हुएनसांग यहाँ बहुतसे मंदिर और मठ देखे थे। अशोकका धर्म-लेख भी यहाँ मौजूद था। होय्सल राज्यकालमें भी कोपण एक समृद्धिशाली जैन केन्द्र रहा था। कोपणकी जैन आचार्य परम्परा इस कालमें भी धर्मका उद्योत और लोकका हित साधती रही थी। शिलाहार वंशके क्षत्रियोंकी एक शाखा कोपणपुरमें दसवीं से तेरहवी शताब्दि तक शासनाधिकारी रही थी शिलाहार वंशके राजा जैनी थे और अपनेको कोपणपुरवराधीश्वर कहते थे निजामराज्यान्तर्गत वर्तमान कोपबाल प्राचीन कोपण प्रमाणित हुआ है। सन् ११९२ के एक शिलालेखमें कोपण आगमित जैन तीर्थोंमें प्रमुख लिखा गया है जिससे कोपणका तात्कालीन महत्व स्पष्ट है। एक समय यहाँ ७७२ जिन मंदिर मौजूद थे, जिनमें निरन्तर ज्ञानदान आदि धर्म कर्म होते थे। जरिसा संस्कृतिका विनाश इन मंदिरोंके मौतसे

१-जैशि० १९१। २-इका० ७/२५। ३-जैशि० १९।

इसीलिए वह लोकवन्द्य थे—जनताका मार्ग प्रदर्शन करके अन्त सन् ११७६ ई० में वह स्वर्गवासी हुये थे।[1] उनके पश्चात् अन्य जैन गुरुओंने द्वारासमुद्रमें जैन संस्कृतिका प्रसार किया था।

श्रवणबेलगोल—

श्रवणबेलगोल दक्षिणभारतमें प्राचीन समयसे जैन केन्द्र रहा है। मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त और श्रुतकेवली भद्रबाहुकी तपस्यासे वह पहले ही पवित्र हो चुका था। होय्सल—कालमें श्रवणबेलगोलकी यह पवित्रता उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही। हम देख चुके हैं कि होय्सलनरेशों और उनके राजकर्मचारियोंने श्रवणबेलगोल पर पधार कर अपनी धार्मिकताका परिचय दिया था। फलतः श्रवणबेलगोल अहिंसा संस्कृतिका केन्द्र रहा और राष्ट्रोन्नतिमें उसके जैन गुरुओंका निर्माण कार्य सदा उल्लेखनीय रहा। इन जैन गुरुओंके भक्त यहाके वणिक वर्ग ही इस तीर्थका समुचित प्रबन्ध करते थे। वह उत्तुंग जिनालयोंके संरक्षक थे। वे प्रसिद्ध खण्डील और मूलभद्रके वंशज थे। सिंहके समान साहस और पराक्रम उनका था। रत्नत्रय धर्मसे विभूषित उन वणिकोंसे श्रवणबेलगोल प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ था। पोय्सलसेट्टि और नेमिसेट्टि राजव्यापारी थे। हम लिख चुके हैं कि उनकी मातायें माचिकब्बे और शान्तिकब्बे धर्मात्मा महिलायें थीं। उन्होंने चन्द्रगिरि पर 'तेरिन बस्ती' नामक जिनालय बनवाया और नन्दीश्वरका निर्माण कराया। (लेख नं० २२९। १३७ शाके १०३९) उस समय मुनि भानुकीर्ति श्रवणबेलगोलसे जैन संस्कृतिको प्रकाशमान् बना रहे

१—मैबै०, पृ० २१०—२११

आचार्यों और उनके भक्तजनोंने किया था। कोपण महातीर्थमें चौवीस जैनाचार्योंका महासंघ विद्यमान था। होयसल सेनापति हुल्लने उनको दान दिया था।[1] इस प्रकार कोपणका ऐश्वर्य और सांस्कृतिक महत्व अपूर्व था। ऐचदण्डाधिपने (सन् ११३५) इसीलिए कोपणको 'आदितीर्थ' कहकर उसकी महत्ता स्थापित की थी[2]। सेनापति गङ्गराजने जब श्रवणबेल्गोल और गङ्गवाडीको पुन जैन मंदिरोंसे समलंकृत किया, तो लोगोंने कहा कि वे स्थान कोपणकी समकोटिके होगये हैं।[3] तेरहवीं शताब्दिमें कोपणके जैन मंदिरोंमें 'शान्तदेवी-वस्ती'–'अरसियवस्ती'–'तीर्थदवस्ती' और 'तिम्मठवरिसियवस्ति' उल्लेखनीय थीं।[4] इनको राजरानियों और राजपुरुषोंने निर्मापित कराया था। राजा और प्रजा–दोनोंने ही कोपणकी श्री वृद्धि की थी, जिससे वे स्वय समृद्धिशाली हुये थे। 'मादण–दण्डनायक' ने कोपणमें 'चतुर्विंशति जिनवस्ती' नामक जिनमंदिर बनवाकर निर्मल यश प्राप्त किया था। श्री कोपणतीर्थमें इम्मेयर पृथीगौड और उनकी भार्या मलौव्वे रहते थे। बोप्पण उनका धर्मात्मा पुत्र था।

**महामंडलाचार्य माघनन्दिजी—**

मूल संघ देशीगणके आचार्य राय-राजगुरु मंडलाचार्य माघनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीके वह प्रिय शिष्य थे। गुरुपदेशसे उन्होंने भ० पार्श्वनाथके नायकत्वका चौवीसी प्रतिमा-पट्ट प्रतिष्ठापित किया था। यह मनोहारी प्रतिमा आजकल नवाब सालारजंगके महलमें सुरूरनगर

१–इका० २/१४८। २–इका०, २/१६६। ३–मेजै०, १९७। ४–मेजै०, १९८।

बलिदान करना सिखाती रही ! अपना और पराया कल्याण करना सच्चा वीरका कर्तव्य है, बेलगोरे यही बताता है । इसीलिये उसकी गिनती आदि तीर्थोंमें हुई !

होयसल दण्डाधिप हुल्लन कल्याणगिरि (बेलगोरे) का महत्व चीन्हा था । उन्होंने वहां एक दर्शनीय जिनमंदिर ऐसा बनाया कि यावच्चन्द्र दिवाकर स्थिर रहे । सन् ११५० में उन्होंने वहां पांच अन्य जिनमंदिर पंच महाकल्याणकोंकी भावनाको लेकर निर्मापे । उनके गुरु महामंडलाचार्य श्री देवकीर्तिदेवने भी प्रतापपुर बस्ति नामक मंदिर बनवाया था । संभवतः सन् ११६१ में कल्याणगिरिमें ही श्री देवकीर्तिदेवने समाधिमरण किया था । दंडाधिप हुल्लन उनकी निषधि बनवाई थी । इसप्रकार कल्याणगिरि अथवा कटिप बेलगोरे आदि तीर्थरूपमें होयसल कालमें प्रख्यात रहा परन्तु पश्चात् उसका नाम निःशेष रह गया । वहां मुसलमानोंका आधिपत्य हुआ और वह हसिरपुर कहलाने लगा ।

बलिग्राम—

बलिगाम ( बलिग्राम ) बलिपुर नामसे भी प्रसिद्ध था । यह स्थान प्राचीनकालसे जैन केन्द्र था । सामन्त लक्ष्मणने वहां ही मल्लिआमोद शान्तीश्वर बस्ति पाषाणकी निर्मापी थी । इन शान्ती-

---

१– [illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] ॥ २१ ॥

—[illegible] पृ १७१-२

२–मैबे पृ १४६

आस्थासे सफल बनाकर पारिलौकिक सिद्धिके लिये कर्तव्यपरायण रहते थे। कोई व्रत करता था और तपस्यामें लीन होता था। अन्तमें सल्लेखना व्रत धारण करके वह सार्थक धर्मशूर बनते थे। एक शिलालेखमें लिखा है कि चोवचोदेय नाकिसट्टिके पुत्र पट्टनस्वामी पायकण्णने समाधिमरण किया और कोपणमें उनकी निषधि बनी।[1] इसप्रकार कोपण जैन केन्द्र होयसल कालमें भी प्रभावशाली रहा।

## केल्लनगेरे ( कल्याणगिरि )—

केल्लनगेरेकी गणना आदि तीर्थोंमें की जाती थी।[2] इसका श्रुतिमधुर नाम यदि कल्याणगिरि रक्खें तो अनुचित नहीं है। तीर्थ रूपमें इसकी स्थापना गङ्गवंशके राजा बुट्टुग ( सन् ९३८–९५३ ) के शासनकालमें हुई थी। वह जैनियोंक शौर्य और धार्मिकताका प्रतीक रहा है। कोण्डकुन्दान्वयी भ० गुणसागरके शिष्य मौनी भट्टारक यहां तपस्या कर रहे थे—मौन और आत्मस्थ वह साधनामें लीन थे। अचानक बल्लप्पने केल्लनगेरे पर आक्रमण किया और उसपर वह अधिकारी हुआ। साधर्मीजन विकल हुए—जैनधर्म पर संकट आया। मौनी भट्टारक भला यह चुपचाप कैसे देखते? वह धर्मशूर थे। कहते हैं कि आततायीके अत्याचारका अन्त करनेमें वह जूझे और वीरगतिको प्राप्त हुये। जनताने धार्मिक भावनामें वीरत्वके दर्शन किये—लोकने मौनी भट्टारकको आत्मीय माना और उनकी उज्ज्वल कीर्तिको चिरस्थायी बनाया। उनकी निषधिका धर्मवीरताका पाठ जैनराष्ट्रको पढ़ाती रही—धर्म और लोककल्याणके लिये मानवको सर्वस्वका

---

१–कोपण०, ८　२–इका०, २/११८　३–मेजै०, २०१

रानसे सिद्धि नामक ग्राम भेंट किया। यही नहीं उन्होंने कुम्भट्टूरमें जैन वर्सतिकी नींव जमा दी। कुम्भट्टूरमें ब्राह्मणोंका सुदृढ़ अड्डा था। उसके मुकाबिलेमें जैनको प्रतिष्ठापित करना माळ्लदेवीका ही कार्य था। माळ्लदेवीने उन ब्राह्मणोंका समुचित आदर और उनकी अपनी जैनाश्रमका नाम 'ब्रह्मजिनालय' रक्खा। ब्राह्मण वर्ग ऐसा प्रभावित हुआ कि उसने एवं कोटीश्वर मूलस्थानके पुरोहितोंने सभीने १८ वैष्णव मंदिरोंके आचार्यों सहित जैनमंदिरको दान दिये। धार्मिक सौहार्दसे जैन और वैष्णव दोनों ही मत कुम्भट्टूरमें उन्नत रहे। सिन्त्रिणीगच्छके श्री पर्वतने भी इस मंदिरका उद्धार किया था। सन् १२ ७ में सावन्त मुद्दरस यहाँ 'कुम्भट्टूर-बसदि' नामक मंदिर निर्माण कराया थे।

उद्धरे —

उद्धरे भी कर्णाटक देशमें एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र था। यह सागरसे ३ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित था और उद्धुर एवं उद्धपुर भी कहलाता था। वीर बल्लालके समयमें उद्धरे विजुर्ग्णि नायक प्रमुख कन्द्र था। पहले लिखा जा चुका है कि उद्धरेमें सन् ११९८ में ईश्वरनायक महोत्सव जैनमंदिर निर्माण कराया था। खेद है आज वहाँ मंदिर शिवालय बना हुआ है। उसकी सुखनासी पर अब भी जिन मूर्तियां निःशाप हैं। चातुरक और गगजालसे ही उद्धरे जैन

१-मैसे १५८-१५ २-मैसे ९ ५

The panel over this lintel has standing Jina figure with Chauri bearers and attendants......this must have been Jainalaya at first, which was later on converted into Siva temple... —Arch. Surv. Mysore 1931 p. 66.

शके चरणार्चक मलधारि गुणचन्द्राचार्य हुये। जिनके द्वारा धर्मकी प्रभावना हुई थी।[1] बलिग्रामके निवासी दान पुण्यमें अपनी लक्ष्मीका सदुपयोग करते थे। वहा तीन औषधालय चलते थे, जिनसे जनताका उपकार होता था।[2] बलिग्राम अपने पांच मठोंके लिए प्रसिद्ध था—वह एक उल्लेखनीय विद्यापीठ था। नृप बल्लाल तृतीयके समयमें मल्लिकामोद शान्तीश्वर मंदिर 'हिरिय बसदि' नामसे प्रसिद्ध हुआ था। उस समय नगरखडके शासक महाप्रधान सेनाधिपति मल्लियण्ण दण्डनायक थे। नगरनायक हेगडे सिरियण्ण, हेज्जुन्काध्यक्ष (Custom Officer) चावुण्डराय, सोमय्य और मालवेगडेने मल्लियण्णकी आज्ञासे श्री पद्मनदिदेवको कतिपय कर दानस्वरूप दिये थे। पद्मनदिदेव सिरियण्णके गुरु थे[3] वह बलिग्राममें भव्यजनोंको धर्मपथमें अग्रसर करते थे। आज बलिग्राम वीरान पड़ा है। उसके खण्डहरोंमें बिखरी पड़ी कतिपय जिनमूर्तियां उसका जैन सम्बन्ध स्पष्ट करती हैं।

कुप्पट्टर—

सुहराब तालुकाका प्राचीन नगर है। सन् १०७७ में वहा कदम्बवशी कीर्तिदेव शासन करते थे। उनकी रानी माललदेवी जैनधर्मकी अनन्य भक्त थीं। मूलसघ तिन्त्रिनीकगच्छके आचार्य पद्मनदि सिद्धातदेव उनके गुरु थे। गुरूपदेशसे माललदेवीने कुप्पट्टरमें 'पार्श्वदेव चैत्यालय' निर्मापित कराया और उसके सुप्रबन्ध और पूजाके लिये

१—"मुनीन्द्र बलिपुरे मल्लिकामोद शान्तीशचरणार्चक।"
—लेख न० ५५ (६९), २—मैकु०, पृ० १८१,

3 Annual Report of Archaeological survey of Mysore, 1929, pp 129-130

उनके शिष्य चन्द्रकीर्तिने भी समाधिमरण किया था। हेग्गडेके समकालीन इनका स्मारक निर्माण था। वे गुरु उनका परम हित को साथ रहे थे।

शृंगेरि—

शृंगेरि आदि शैव ब्राह्मणोंका मुख्य केन्द्र है परन्तु जैनोंने भी इस ब्राह्मण केन्द्रमें अपना स्थान निश्चित किया गया था। नगरके ठीक मध्यमें जैनोंका एकमात्र मन्दिर पार्श्वनाथबस्ति अवस्थित है। मात्र इस मन्दिरमें गर्भगृह एक सुखनासि, एक नवरंग और एक मुखमण्डप शेष हैं। एक स्तंभ अलंकृत प्रकारके हैं। मंदिरके सम्मुख मुखमण्डप कहीं दूसरे स्थानसे लाकर बनाया गया है। गर्भगृहमें एक सुन्दर पाषाणकी बिम्बमूर्ति और नवरंगमें पार्श्वप्रभुकी तीन मूर्तियां हैं। इनमेंसे सबसे बड़ी मूर्ति १२वीं सदीकी है। पाषाणपटमें एक योगी किसी रानीको पढ़ा रहे हुये चित्रित हैं। संभवत यह मंदिर १२वीं शताब्दिका है। सन् ११४० में होयसलनरेशके कतिपय दाताओंने इसको दान दिया था। निडुगोडके ... मारसिंहकी स्मृतिमें भी एक जिनमंदिर यहाँ सन् ११६ में निर्मित किया गया था। वीर बणिजों और नाना देशियोंने इस मंदिरको दान दिया था। शृंगेरिमें जैन केन्द्रका अस्तित्व यह प्रमाणित करता है कि होयसल कालमें जैन धर्मका प्रभाव सुदृढ और शक्तिशाली था।

---

१-मेर्के २ ५-२ ६ २-आर्के वर्क मैसूर १९११ पृ १५...

धर्मका प्रमुख स्थान रहा था। अनेक आचार्य और राजपुरुषों द्वारा उद्धरेमें धर्मकी प्रभावना हुई थी। यहाके कनक जिनालय, पद्मवसदि जिनालय और एरगजिनालय दर्शनीय सांस्कृतिक केन्द्र थे।[1] होय्सल ही नहीं विजयनगर साम्राज्यमें भी उद्धरे जैन केन्द्र रहा, यह पाठक आगे देखेंगे।

हेग्गरे—

हेग्गरे—चितलदुग जिलेमें हुलियूरसे सात मील दूर है। होय्सल कालमें यह भी जैन केन्द्र था और यहाके जैन गुरु लोकप्रसिद्ध थे। हुलियेरपुरके नायक सामन्त गोवदेव थे। उनकी दो धर्मपत्नियां दानशीला शन्तले और महादेवी नायकिति थी। शन्तले उदारमना थी—उसने जिनश्रीधर्म, महेश्वरागम, सद्वैष्णवाश्रित और बौद्धागम दर्शनोंका समान आदर किया था। गोवदेव स्वयं जैनधर्मके अनन्य उपासक थे। उनके गुरु चन्द्रायणदेव देशीगणसे सम्बन्धित थे। सन् ११६० में महादेवीका स्वर्गवास हुआ, जो उनकी स्मृतिमें गोवदेवने हेग्गरेमें 'चेण्ण पार्श्व-वसदि' नामक जिनालय निर्मापा था। उनके पुत्र विट्टिदेवने मंदिरमें अष्टप्रकारकी पूजा और आहारदानके लिये भूमि व कर-दान दिया था।[2] विट्टिदेवके गुरु श्री माणिक्यनंदि सिद्धान्तदेव थे। हेग्गरेके प्रमुख नागरिकोंने उनके दानको सराहा और स्वयं भी दान दिया। यह मंदिर होय्सल शिल्पका दर्शनीय नमूना है। माणिक्यनन्दिके शिष्य मेघचन्द्र भट्टारकने सन् ११६३में यहां सन्यासमरण किया था। सन् १२७९ में मलधारि बालचन्द्र

१–मजै०, २०५ २–मैजै०, ९४

किया यह प्रसिद्ध थी। उसके समयमें बहुतसे तालाब और मन्दिर दर्शनीय थे। यह नई द्वाराकी दिखती थी। उसके बाजार महलोंसे घेरे रहते थे जिनकी झलकसे आकाशमें इन्द्रधनुष पड़ता था और स्वर्णकी वर्षा होती थी। यह थी समृद्धि आरसिकेरेकी! नृप नरसिंह ने 'सहस्रकूट जिनालय' बनाया वह निस्सन्देह आरसिकेरेका एक भूषण था। आरसिकेरेका यह वैभव राजा और प्रजाकी धार्मिकता और दानशीलताका प्रमाण था। यहांके ब्राह्मण वेदविद्, क्षत्रिय रक्षक और वीर वणिक धनवान, चतुर्थवर्ण (शूद्र) स्वच्छ आज्ञापालक किंवा सुंदर भृत्य आज्ञाकारी मंदिर लोकगृहादि सुन्दर गहरे और विशाल वन फलोंसे भरे और भूमि फूलोंसे ढके थे। गंधशालि धानकी सुगंधिसे वहांका वातावरण व्याप्त रहता था। आरसिकेरेमें जिनधर्मानुयायी १०० कुलोंके मनुष्य जीव थे। वे मनुष्य (जैनी) सत्यभाषी जैन-धर्मानुयायी जिनार्चनमें इन्द्रसे चतुर्गुणित भक्ति रखनेवाले, धनऐश्वर्यमें कुबेर तुल्य सत्पात्रको निरन्तर दान देनेवाले और धनोपार्जनमें किसीको दुख न दे सबको सुखी बनानेवाले थे। सब उन सब जैनियोंकी व्यापारी कौम कहता। आचार्यके सारक्षको प्राप्त करके देश विपरीतसम यहां एक कोटि धन खर्च करके जिनमंदिर व उसका परकोटा बनवाया यह हम पहले लिख चुके हैं। वैसाखके सात कराइ मनुष्योंने इस मंदिरको मान्य किया इसलिये यह जिनालय 'एककोटि' कहलाया। उन्होंने ही यहां सहस्रकूट जिनकी प्रतिमा

१-इका मा ५ पृ १४१ २-इका ५/१४७ (भार १ सन ११८९) ३-इका मा ५ पृ १४९. ४-इका ५/१४ (भार नं ७७)।

कोल्हापुर—

कोल्हापुर भी इस समय एक जैन केन्द्र था। श्री कुलचन्द्रदेवके शिष्य माघनन्दिमुनिने कोल्हापुरको एक तीर्थ बना दिया था। माघनदि सिद्धातदेवके शिष्य सामन्त कामदेव थे। कामदेवके आधीन रहे वासुदेवने वहां पार्श्वनाथजीका जिनमदिर बनवाया था। उन्होंने उसके लिये एवं रूपनारायण जैन मदिरकी मरम्मतके लिये दान दिया था। श्री माघनदिजीके शिष्य माणिकनंदि भी यहा मौजूद थे। मूलत कोलापुरका नाम क्षुल्लकपुर उसके जैनतत्वका बोधक है। वह शिलाहारवशी जैन राजाओंकी राजधानी रहा है।[1] यहांकी जैन गुरुपरम्परा लोक प्रसिद्ध रही है, जिसका सम्बन्ध देशीयगण, पुस्तकगच्छसे था। माघनदिजी वहाकी सावन्तवसतिसे भी सम्बन्धित थे।[2] उपरान्त इस बस्तिसे शुभचद्र सिद्धान्तदेवके शिष्य सागरनन्दि सिद्धान्तदेवका सम्बन्ध हुआ था। इन जैन गुरुओंके द्वारा जनताकी सांस्कृतिक उन्नति हुई थी।

आरसियकेरे।

आरसियकेरे होयसल राज्यमें एक समृद्धिशाली जैन केन्द्र था। यहा पर अजैन ब्राह्मण और जैन प्रेमपूर्वक रहते थे। नृप बल्लाल द्वितीयने उसे अपनी राजधानी बनाया था। एक लेखमें आरसियकेरेकी तुलना अमरपुरीसे की गई मिलती है। आम्रवृक्षों और पानकी लताओंके

---

१–बप्राजैस्मा०, पृ० १५३ २–मैजे०, पृ० २०७ ३–मैजे०, पृ० १४९ ४–इका०, ५ (१) पृ० १४८ ( आरसीकेरे शिलालेख न० १२ सन् १२२३ )।

१२ वीं शताब्दियोंमें यह एक समृद्धिशाली नगर थी। जैनतीर्थ-रूपमें यह पहलेसे पूजा जाता था। बोप्पदेवके समयमें भन्दनिककी प्रसिद्धि विशेष हुई थी। सन् ११ ४ के शिलालेखमें एक बड़े बोप्पदेवकी धार्मिकताका परिचय मिलता है। उसमें लिखा है कि बोप्प जैनधर्मको उन्नत बनानेमें देवाधिदेवसे आधी बाजी लेते थे—देवके बाद वही जैनधर्मके सब प्रभावक गिने जाते थे। भन्दनिकके प्रसिद्ध शान्तिनाथ मंदिरका महप उन्होंने बनवाया था। अजितकीर्ति सिद्धांतिक शिष्य शुभचन्द्र भन्दनिकके प्रसिद्ध आचार्य थे—उनके द्वारा इस तीर्थकी उन्नति विशेष हुई थी। उन्हें ही शान्तिनाथ (भन्दनिक) तीर्थका पारुपत्य (Management) प्राप्त हुआ था। हेमचन्द्र। बल्लालदेवके दण्डविक प्रेमपूर्वक भन्दनिकेकी रक्षा की थी सन् १२ ७ में कदम्बन्‌पति भन्दनिके पर शासन करते थे। उस समय भी शान्तिनाथबस्तिकी प्रसिद्धि अपूर्व थी। तब उस मंदिरकी व्यवस्था आपूरगणके अनन्तकीर्ति मट्टारक करते थे। सामन्त मुहम्म उनके शिष्य थे। बल्लालदेवके राज्यमें वह मुख्य थे। देवचमूपतिके बोम्म उत्तराधिकारी और एक धर्मात्मा जैन थे। सन् १२११ में श्री शुभचन्द्रदेवका यहीं समाधिमरण हुआ था। आज भन्दनिकके खंडहरोंमें बना जंगल उगा हुआ है। जैन मंदिर आज भी भन्दनिकके गत वैभवकी याद दिला रहा है।

उपर्युल्लिखित जैन-केन्द्र—स्थान विजयनगर साम्राज्यके अन्तर-

---

१-मार्के सर्वे मद्रास, १९११ पृ ४४।
२-पूर्व पृ १ ७-१ ९।

निर्मापित कराई थी। जिनेन्द्रकी अष्टप्रकारी पूजा, जीर्णोद्धार आदिके लिये मुनि सागरनंदिको हन्दरहलु नामक ग्रामका दान धर्मवीर रेचरसने दिया। वहांके भव्योंने सहस्रकूट चैत्यालय और श्री शान्तिनाथ जिनालय बनवाये थे और उनके लिये सागरनन्दिजीको दान देकर राजकीय रजिस्टरमें दर्ज कराया था।' सहस्रकूट जिनालयके लिये कुमारी सोवलदेवी एवं हेगडे दचयके छोटे भाई सिंगय्यने ब्राह्मणोंके साथ और १००० भव्य कुलों व नागरिकों सहित दानपत्र लिखा थी। रेचय्यने अपने गुरु मास्टरमटार (Ayya) को विद्यादानके लिये भी दान दिया था। इस प्रकार आरसियकेरेके भव्यजन और नागरिक निरन्तर धर्म कर्म करते रहते थे। उनकी दानशीलता विवेकसे प्रेरित थी, इसी कारण वह देश और धर्मकी उन्नति करनेमें सहायक थी! किंतु आज यह समृद्धिशाली जैन केन्द्र दीन हीन दशामें है! सहस्रकूट जिनालय वृद्ध पुरुषके शिथिलगात और जराजरावस्थासे स्पर्द्धा कर रहा है! किन्तु जिनमूर्तियां और जिनालयका गर्भगृह आज भी अपनी कलाका सत्य शिवं सुन्दर-रूप बरबस यात्रीके हृदय-पटपर अङ्कित कर रहे हैं। भव्यजनोंका पवित्र पुण्य क्या कभी निष्क्रिय हो सकता है? जिनधर्मके इन गौरवशाली प्रतीकोंका उद्धार जितनी जल्दी हम कर सकें, उतना ही जैनके लिये गौरवास्पद है!

**बन्दनिके—**

बन्दनिके नगरखण्डके कदंब राजाओंकी राजधानी थी। ११ वीं

१–इका०, नं० ७७ (१२००) पृ० १४०।
२–इका०, नं० ७८ पृ० १४१।

१२ वीं शताब्दियोंमें यह एक समृद्धिशाली नगर थे। जैनतीर्थ-रूपमें यह पहलेसे पूज्य माना था। बोप्पदेवके समयमें बन्दनिकेकी प्रसिद्धि विशेष हुई थी। सन् १२ ४ के शिलालेखमें एक बड़े बोप्पदेवकी धार्मिकताका परिचय मिलता है। उसमें लिखा है कि बोप्प जैनधर्मको उन्नत बनानेमें देहाविरोधस आपी भाजी जैसे थे—रेचक नाद यही जैनधर्मके सब प्रभावक गिन जाते थे। बन्दनिकेके प्रसिद्ध शान्तिनाथ मन्दिरका मंडप इन्होंने बनवाया था। भक्तिकीर्ति सिद्धांतके शिष्य शुभचन्द्र बन्दनिकेके प्रसिद्ध आचार्य थे—उनके द्वारा इस तीर्थकी उन्नति विशेष हुई थी। उन्हें ही शान्तिनाथ (बन्दनिक) तीर्थकी प्रबन्ध ( Management ) प्राप्त हुआ था। होय्सलनृप बल्लालदेवके दंडाधिप प्रेमपूर्वक बन्दनिकेकी रक्षा की थी सन् १२ ७ में कदम्बनृप ब्रह्म बन्दनिके पर शासन करते थे। उस समय भी शान्तिनाथबस्तिकी प्रसिद्धि अपूर्व थी। तब उस मंदिरकी व्यवस्था क्राणूरगणके अनन्तकीर्ति भट्टारक करते थे। सामन्त मुद्दय्य उनके शिष्य थे। कदम्बनृपके राज्यमें यह मुख्य थे। रेचनृपतिके योग्य दण्डाधिकारी और एक धर्मात्मा जैन थे। सन् १२१२ में भी शुभचन्द्रदेवका यहां समाधिमरण हुआ था। आज बन्दनिकेके खंडहरोंमें पड़ा खंभा लगा हुआ है। जैन मंदिर आज भी बन्दनिकेके गत वैभवकी याद दिला रहा है।

उपर्युल्लिखित जैन—केन्द्र—स्थान विजयनगर साम्राज्यके अन्तर

---

१—मार्के वर्क्स मद्रास, १९११ पृ ४४।
२—मेज पृ १७—१९।

कालमें भी जैन संस्कृतिका सन्देश दिगन्तव्यापी बनाते रहे। उपरान्त मुसलमानोंके आक्रमणोंसे वह अपनेको सभाल न सके और धराशायी होगये। किन्तु इस हीन दशामें भी वह अपनी महत्ता रखते हैं और जैन समृद्धिको प्रमाणित करते हैं। आज इन मंदिरोंको एकबार फिर जैन संस्कृतिका केन्द्र बनानेकी आवश्यकता है।

जैन अभ्युदयके साधन—

होयसल राज्य जैन अभ्युदय और उसके अवसानका एक अनूठा पटाक्षेप है। जिस समय शैव गुरुओंका दर्प जैनके सौम्य शान्त प्रभावको मिटा चुका था, उस समय सुदत्त वर्द्धमान मुनिपुङ्गवको जैन राष्ट्रके पुनरुत्थानकी आवश्यकता प्रतीत हुई और उन्होंने होयसल राज्य स्थापित किया। धर्माभ्युदय राष्ट्रीय सहयोगके विना पङ्गु रहता है—"यथा राजा तथा प्रजा" की नीति सदा ही कार्यकारी रही है। जैनाचार्योंने इस सत्यको कभी नहीं भुला था। स्वय भ० महावीरके भक्त भारतके सब ही प्रमुख शासक थे और उनके द्वारा जैनका अभ्युदय हुआ था। नन्द और मौर्यवंशोंके शासकोंने जैन धर्मका प्रसार किया। उपरात कालमें जैनका आश्रय किनर शासकोंने लिया, यह हम देखते आये हैं। इस प्रगतिको जीवित रखनेमें जैन संघके महान् आचार्योंका अस्तित्व ही कारणभूत था। कोई शताब्दि ऐसी नहीं मिलती, जिसमें एक या दो महान् आचार्य जैनको आगे बढाये न मिलते हों। भद्रबाहु, जिनचन्द्र, कुन्दकुन्द, उमास्वाति, समन्तभद्र आदि आचार्य इसी क्रमसे हुये कि जैन अभ्युदयका सिलसिला टूटा नहीं, किन्तु उपरान्त यह बात न रही। वैसे प्रकाण्ड जैनाचार्य हुये

अवस्था परन्तु एक लम्बे अन्तरकालके बाद। समन्तभद्रजीके बाद सातवीं–आठवीं शताब्दिमें अकस्मात् कहीं जैन अभ्युदयके दर्शन आचार्य जिनसेन और अकलङ्कजीके महान व्यक्तित्वमें होते हैं। फिर सन् १०२४ में आचार्य गोपनन्दि द्वारा जिनधर्मका उत्थान हुआ। सन् ११२३ में चन्द्रकीर्ति भट्टारक द्वारा उसका अभ्युदय करनेका उल्लेख मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि जैन संघमें उपरान्त वह प्राचीन परम्परा नहीं रही जो प्रत्येक शताब्दिमें राष्ट्रको एक महान् जैन गुरु भेंट करती थी। दक्षिण भारतकी जैन आचार्य परम्पराको ही समग्र भारतके दिगम्बर जैन संघका अक्षुण्ण क्रमका गौरव तबतक प्राप्त था परन्तु उपरान्त वह बात नहीं रही। जैसे कोई आचार्य ही नहीं हुए जिनका सिक्का सारे भारतके जैन संघपर जमा होता! जैनधर्मके अवपातमें यह एक मुख्य कारण था।

**जैन धर्मकी अवनतिके कारण—**

प्रतिष्ठित जैन गुरुओंकी हीनताके साथ ही जो भी जन गुरु रहे उनमें एक बातकी कमी आ गई। जैनाचार्यका कर्तव्य है कि वह येनकेन प्रकारेण जैन संघका अभ्युदय करे और उसकी राष्ट्रीय प्रगतिसे अपनेको अछूता न रक्खे। यदि शासक धर्मात्मा होगा तो[1] प्रजाका जीवन एक हद तक स्वयमेव धर्ममय हो जायेगा। श्री सिंहनन्द्याचार्य, सुदत्त मुनि आदि आचार्योंने इस सिद्धान्तपर कार्य किया था और जैनके पोषक साम्राज्योंकी स्थापना की परन्तु उनके बाद हुए आचार्योंने इस बातको भुला सा दिया। न सैद्धान्तिक

---

१–मेजे पृ १०१

वार्तामें ही पग गये और कुछ क्रियाकाण्डी बन गये । राजाओंको प्रभावित करन और उनके राजकाजमें भाग लेनेस वह परहेज सा करने लगे । यह कार्य उन्होंने जैन श्रावकोंपर छोड दिया । जैन श्रावक राज्य और सैन्य सचालनमें अग्रसर रहे अवश्य, परन्तु विधर्मी आचार्योंका मुकाबिला तो जनाचार्योंको ही लेना था । जैनाचार्य वह भी न कर सके ! इन सम्मन्दर, अप्पर, रामानुज आदि अजैन आचार्योंन तत्कालीन शासकोंको अपने धर्मका अनुयायी बना लिया, जिन्होंने जैनधर्मको पनपने नहीं दिया । उल्टा उसका ह्रास ही किया । साथ ही जैन जनताको अपने मतमें लेनके लिये उन्होंन जैन नियमोंको भी स्वीकार कर लिया । आहार-अभय-भैषज्य-शास्त्रदानकी जैन परम्परा उनके मठों और मदिरोंमें भी चल निकली । पशु हिंसाको बन्द करनेका उपदेश भी वैष्णव देने लगे । जैनियोंन ६३ शलाका पुरुष माने थे, वैसे ही शैवोंने भी ६३ गुरुओंको सिरज लियां । परिणामत जनता भी जैनक विमुख हो चली, परन्तु जैनकी जड जनतामें इतनी गहरी बैठी हुई थी कि राजबल पाकर भी शैव और वैष्णव जैनका निर्मूलन दक्षिण भारतसे नहीं कर सके ! जैनोंने अपन सघको अन्तर्व्यवस्था सभाली और जैन श्रावकोंके साहसी क्रूरोंने जैनधर्मको मरनेसे बचा लिया । वैसे चाल आदि देशोंमें उन्हें तलवारके घाट उतारकर नाम निशेष करनका घृणित उद्योग किया ही गया था ।

## राजा, रानी और राज-मत्रि-मडल—

होयसल राज्यकी यह विशेषता रही कि साम्प्रदायिक विद्वेषन

१-मजै०, पृ० २७३

तालावोंमें चावलकी उपजका तिहाई ही लिया जाता था। प्रत्येक प्रान्तका राजकर (Revenue) पहलेसे निश्चित था। इसके अतिरिक्त निम्नप्रकारके कर भी लगाये जाते थे—भूमिकर, कर्षणकर, गृहकर, वेगार, सेनाकर, प्रान्तपरिवर्तनकर, वयप्राप्तकर, पुत्रजन्मकर, चुंगी करघा-कर, आयात-निर्यातकर, विवाहकर इत्यादि। इनकी वसूलयावी राज कर्मचारियों द्वारा होती थी।[1]

अपराध—

होयसल राज्यशासन धर्मराज्य था। उसमें प्रजा सुखी थी। अपराधी बहुत कम थे। जब कभी कोई उद्दण्ड युवक किसी गणिकाको ले भागता तो उसे समुचित दण्ड मिलता था। सीमाओं पर गउ चुरानेके अपराध होते थे। अपराधियोंको ग्रामीण वीर समुचित दण्ड देते थे।[2]

लोकहितके कार्य—

होयसल राजागण स्वयं एवं उनके राज्याधिकारीगण और प्रमुख प्रजाजन जनहितके कार्योंका करनेमें विशेष उत्साह प्रगट करते थे। नगरोंमें बागबगीचे लगवाना, कमलोंसे लहलहाते तालावोंको खुदवाना, मार्गमें योजन-योजन ( ९ मील ) पर यात्रियोंकी सुविधाके लिये पेड़ोंका लगवाना व सरायें बनवाना आदि सार्वजनिक कार्योंमें वे लोग अपनी लक्ष्मीका सदुपयोग करते थे। ठौर २ पर औषधालय स्थापित करना उनका कर्तव्य था। सन् ११५८ में वल्लिगावेमें तीन औषधालय थे। १२ वीं शताब्दिमें धन्वन्तरि तुल्य देवराज प्रसिद्ध

१-मैकु०, पृ० १७४ २-Ibid 178

वैद्य थे—उन्होंने अपनी चिकित्साप्रणाली चलाई थी । सिद्धान्तचू
प्रचार था—अनेक विद्वान् सद्धर्मध्यानी थे। जैन मंदिरोंमें सब प्रकारकी
शिक्षाका प्रबंध था । ब्राह्मण अग्रहार भी शिक्षाके केन्द्र हुये थे।
सन् ११२९ में होय्सल दण्डाधीश पद्मनाभने एक विद्यालय मैसूरमें
स्थापित किया था । इसमें अन्य विषयोंके साथ नागर ( नागरी )
कनड़ तामिल और आर्य ( मराठी ) भाषाओंको भी पढ़ाया जाता
था । देश समृद्धिशाली था ।

वणिककर्म—

दूर दूर देशोंसे वणिककर्म व्यापार करता था । सभी खाद्य
पदार्थ सस्ते दामसे मिलते थे । एक हूण ( पगम् ) का सात आढ़
मक्खन भी ज्यादा अनाज आता था । यह व्यापारी महा-वड्ड व्यव
हारी कहलाते थे । वे बड़े नीतिकुशल होते थे । एक बोप्पीके
लेखमें कहा गया है कि यह होय्सलनरेश और चालुक्य (राष्ट्रों)
के मित्र थे उन्होंने दोनों राजाओंमें सन्धि कराई थी। मालवनरेश
एवं कलिंग चोल और पाण्ड्यनरेशोंकी आवश्यकताओंकी वह पूर्ति
करते थे । होय्सलराज्यमें उनके समान कोई व्यापारी नहीं थे । वह
ईमानदार प्रतिष्ठित मितभाषी, बुद्धिमान् और सत्यप्रिय थे। वहाँसे
घोड़े हाथी मोती लाते और राजाओंको बेचते थे ।

सामाजिक उदारता—

होय्सल साम्राज्यमें धार्मिक उदारताके साथ ही सामाजिक
समुदारता भी प्रशंसनीय थी । यही नहीं कि एक वंशविशेषी यदि

---

१–मैसूर पृ १०८ २–भारतीय लेख नं ८२ सन् ११११
३–मैसूर पृ० १८२

शम्भूमंदिरको दान दें और वह स्वयं जैन रहें अथवा सचिवतिलक सिङ्गिमय्य शैव रहें और उनकी पत्नी कलियक्के कट्टर श्राविका रही हों, बल्कि जातिपांतिका बंधन भी तब शिथिल था। जैनाचार्योंका प्रभाव सर्वत्र था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंमें परस्पर अन्तरजातीय विवाह होते थे। दंडाधिप चन्द्रमौलिको देखिये—वह स्वयं द्विजावन ब्राह्मण थे, किन्तु उनकी पत्नी आचियक्क शिवेयनायक (क्षत्रिय) की पुत्री थी। उनके भाई चम्मेयनायकका विवाह मल्लिसेट्टि ( सेठ ) की पुत्री दोचव्वेसे हुआ था। नृपवल्लालने कई सौ कन्याओंसे विवाह किया था—वे सब क्षत्रिय कन्या ही नहीं थीं। सारांशत जातिगत उच्च–नीचताका घमंड होय्सल कालकी समाजमें वैसा नहीं था जैसा कि वह राजपूत जमानेमें फैला था। इस उदार व्यवहारसे ही यह परिणाम था कि सम्राट् विष्णुवर्द्धनके सेनापतियोंमें दंडाधिप अमृतको पाते हैं, यद्यपि जातिकी अपेक्षा वह शूद्र थे जैनधर्मकी समुदार वृत्ति और अहिंसा संस्कृति सर्वत्र कार्यकारी थी। यही कारण है कि होयसल राज्यमें रामानुजाचार्यजीके प्रचार करने पर भी वर्णाश्रमकी कट्टरता उतनी नहीं थी जितनी कि वह बादमें हुई। जैनियोंकी समुदार वृत्तिके समक्ष वह टिक भी कैसे सकती थी ?

---

# होय्सलकालीन जैनसाहित्य और कला।

साहित्य और कला—

अहिंसा संस्कृति सुख शान्तिको सिरजती है और सुख शान्ति-पूर्ण घड़ियोंमें ही मानव सत्य-शिव-सुन्दर रूप साहित्यकलाका सिरजन

उसके अपना जीवन सफल बनाता है। होय्सल राज्य यद्यपि पड़ोसी शत्रुओंके कारण सर्वथा निरापद तो न रहा—होय्सल नरेश और उनके जैन सेनापति बराबर अपने पड़ोसी शत्रुओंसे लड़ते रहे फिर भी होय्सल राज्यकी आन्तरिक व्यवस्था शांतिपूर्ण थी। प्रजाजन सुखी जीवन बिताते थे और सब ही देशको समृद्धिशाली बनानेमें अग्रसर थे। ऐसे वातावरण देशमें साहित्य और कलाका अभ्युदय होना अनिवार्य था।

**कनाड़ी व अन्य भाषायें—**

होय्सल राज्यका बहुभाग कर्नाटक भाषाभाषी था इस कारण कनाड़ी ही देश भाषा हो रही थी किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि संस्कृत और जैनोंके प्राकृतको कोई स्थान ही प्राप्त न था। एक शिलालेखमें हम देख चुके हैं कि नागर (मागधी), तामिल कनाड़ और आर्य (मराठी व संस्कृत) भाषाओंकी शिक्षा उस समय दी जाती थी। नागरसे संस्कृत देशी (अपभ्रंश) भाषा अभिप्रेत थी। इन सभी भाषाओंकी साहित्यरचना तब होती थी।

**संस्कृत जैन साहित्य—**

होय्सलकालमें संस्कृत जैन साहित्यकी विशेष उन्नति हुई दृष्टि नहीं पड़ती बल्कि संस्कृत जैन साहित्यका केन्द्र इस समय दक्षिणसे हटकर उत्तर पश्चिमकी ओर बढ़ गया था। जैनसंघमें सार्वभौम रूपेण मान्य रचनायें जैसे श्री अमितगत्याचार्यकी पंचसंग्रह आदि और हरिषेणकी कृत बृहत् कथाकोष इतिहास विषयकी अनूठी हैं। हरिषेणकीय कथाकोष इतिहासके लिये भी महत्वकी वस्तु है। इसमें दक्षिण भारतके स्थानों और व्यक्तियोंका उल्लेख बहुतायतसे

मिलता है । हरिषेणजी पुन्नाट सघके आचार्य थे। उन्होंने वर्द्धमानपुरमें उसे स० ९८९ में रचा था।[1]

क्षात्रचूडामणि—दक्षिणभारतकी इस समयकी श्रेष्ठ रचनाओंमें आचार्य वादीभसिंहजीका 'क्षात्रचूडामणि' काव्य उल्लेखनीय है। इसमें जीवधरजीका चरित्रचित्रण अतीव सुन्दररूपमें किया गया है। कहीं २ तो इनका निरूपण कादम्बरीसे बाजी ले जाता है। वादीभसिंहजी आचार्य पुष्पसेनके शिष्य थे। उनका मूल नाम ओडेयदेव था। वह बड़े भारी वादी थे।

देशी भाषा साहित्य—

देशी भाषा अथवा अपभ्रंश प्राकृत भाषाकी साहित्यक प्रगतिका क्षेत्र भी उत्तरापथ और मुख्यत कर्णाटक प्रदेश ही रहा। इस समय देशी भाषामें कई अनूठी रचनायें रचीं गईं थीं। मुनि रामसिंहजी कृत 'दोहापाहुड़'—मुनि श्रीचद्र कृत 'कथाकोष', मुनि योगचन्द्र कृत 'योगसार' प्रभृति रचनायें उल्लेखनीय है। इनकी भाषा 'नागरी' के बहुत निकट आगई थी, यह उनके निम्नलिखित उद्धरणोंसे स्पष्ट है—

" संसारु असारु सव्वु अथिरु,
पिय पुत्त मित्त माया तिमिरु।
खणि दीसई खणि पुणु उस्सरई,
सपय पुणु संपहे अणु हरई॥ "—श्रीचन्द्र।

× × ×

" अजर अमर गुणागणनिलई जहि अप्पा थिर थाई।
सो कम्महि ण च धंधयउ, संचिय पुव्व विलाई॥ '
—योगचन्द्र।

---

१—बृहत् कथाकोष, भूमिका पृ० ११८-११९

**कन्नड़ जैन कवि अभिनव पम्प—**

कन्नड़ भाषाके साहित्यको समुन्नत बनानेमें जैनियोंका हाथ भी गहरा रहा था। जैन कवि ही कन्नड़की मधु रचनाओंके रचयिता थे। इस समयके श्रेष्ठ कन्नड़ [1]कवि श्री नागचन्द्रजी थे, जो 'अभिनव-पंप' कहलाते थे। कन्नड़ साहित्यका यह महाकवि तुलसीदास ही समझिये। कर्णाटक प्रान्तमें इनकी रची हुई 'रामायण' का खूब ही प्रचार है। "यह ग्रंथ ऐसा सुन्दर और सरस है कि इसे प्रत्येक धर्मका अनुयायी पढ़ता है। कोई इस बातका ख्याल नहीं करता है कि इसकी कथा जैनधर्मके अनुसार है। यह ग्रंथ गद्यपद्य है।" इन्होंने 'मल्लिनाथपुराण'की भी गद्यपद्यमय सुन्दर रचना की है। नागचन्द्रजी सन् ११०५ के लगभग हुए हैं। भारती कर्णपूर कविता मनोहर साहित्य विद्याधर आदि इनके उपनाम थे। यह जैसे विद्वान् थे वैसे ही धर्मात्मा धनवान थे। जिस समय इन्होंने 'मल्लिनाथ पुराण' की रचना की थी उसी समय इन्होंने बीजापुरमें विपुल धन लगाकर मल्लिनाथ भगवानका एक विशाल मंदिर बनवाया था। सम्भवतः यह बीजापुरके रहनेवाले थे। श्री बालचन्द्र मुनि उनके गुरु थे जो श्री मेघचन्द्रजीके सहाध्यायी थे।

कन्ति—नागचन्द्रके समयमें ही कन्नड़की प्रसिद्ध कवियत्री श्री कन्ति भी हुई थीं। उनकी कविता मनोहारिणी होती थी। कन्नड़ साहित्यमें शायद यही पहली स्त्री—कवि हैं। कवि पाडुपक्षिन इनका स्मरण अभिनव वाग्देवी रूपमें किया है। द्वारसमुद्रमें होयसल राजा विष्णुवर्द्धनकी सभामें अभिनव पम्प और कन्तिका वाद हुआ था। अभिनव पम्पकी दी हुई समस्याकी कन्तिने पूर्ति की थी।

---

१–२–कर्णाटक जैन कवि पृ० १४ १६ व २१

राजादित्य—सम्राट् विष्णुवर्द्धनकी सभामें राजादित्य नामक विद्वान् प्रधान पंडित थे। कन्नड साहित्यमें इन्होंने ही सबसे पहले गणित शास्त्रकी रचना की थी। इनके रचे हुये 'व्यवहारगणित'—'क्षेत्रगणित' 'व्यवहार रत्न'—'जैनगणितसूत्रटीकोदाहरण'—'चित्रहसुगे' और लीलावती नामक गणित ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनका 'व्यवहार-गणित' ग्रन्थ बहुत ही अच्छा और उपयोगी है। इसे उन्होंने पांच दिनमें ही रचा था। उनके गुरु शुभचन्द्रदेव थे।[1]

कवि नेमिचन्द्र—कवि नेमिचन्द्र ( सन् ११७० ) प्रसिद्ध कवि थे। वीर बल्लालदेव और लक्ष्मणदेवकी सभामें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कलाकान्त, कवि राजमल्ल, चर्तुभाषा कवि चक्रवर्ती आदि उपाधियां उनके महत्वको प्रगट करतीं हैं। उनके रचे हुये दो ग्रन्थ 'लीलावती' और 'नेमिनाथपुराण' नामक मिलते हैं। लीलावती ग्रन्थ मुख्यतः शृङ्गाररसात्मक है और बहुत ही सुन्दर है।[2]

श्रीधराचार्य—श्रीधराचार्य नरिगुंद स्थानके रहनेवाले ब्राह्मण थे। उनका रचा हुआ 'जातक तिलक' नामक ग्रन्थ उपलब्ध है। उन्होंने 'चन्द्रप्रभचरित्' भी लिखा था। कनड़ीके यह सबसे पहले ज्योतिष ग्रन्थ निर्माता हैं। उन्होंने अपना ग्रन्थ सन् १०४९ में लिखा था। इनके गद्यपद्य—विद्याधर, बुधमित्र आदि सम्मानसूचक नाम हैं।[3] इनके अतिरिक्त शान्तिनाथ, वादि कुमुदचन्द्र आदि अनेक विद्वान हुए हैं जिन्होंने कन्नड साहित्यको उन्नत बनाया था।

**जैन—होयसल कला—**

---

१—कर्णाटक जैन कवि पृ १४, १५ व १६  २—कर्णाटक जैन कवि, पृ० २१—२३  ३—अनेकान्त वर्ष १, पृ० ४५९

साहित्यके साथ ही जैनोंने होयसल राज्यको कलामयी मूर्तियों और मंदिरोंसे अलंकृत किया था। होयसल नरेशोंके शासन लेख भी कलामय लिखे गये थे। उनके अधिकांश शिलालेख चिकने पाषाण पटपर ऐसी सुन्दरतासे अंकित किये गये हैं कि देखते ही बनते हैं। उनमें एक अक्षर भी घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता। अक्षरोंको भी शृंगारपूर्ण ढंगसे बनाया गया है। एक शिल्पी हाथी सिंह घोड़ा आदिके रूपमें अक्षरोंको लिखनेका कौशल रखता था। होयसल जैन शिलालेखोंके मध्यमें जिनेन्द्रकी मूर्ति अति भव्य दिखती है। होयसल कालकी जिन मूर्तियां वैसे भी दिव्य और मनोहारी हैं। दोड्डबेट्ट और चन्द्रगिरि पर्वतपर पार्श्वनाथ और शान्तिनाथ भगवान्की मूर्तियां ऐसी अनूठी हैं मानों मुखसे शान्ति और वैराग्यको बहानेवाली बातें ही करती हैं।

जैन मंदिर—वास्तुकला निर्माणमें होयसल कालके नमूने अद्वितीय हैं। पाषाणको मोम बनाकर तक्षणकलाको होयसल मंदिरोंमें उन्नत बनाया गया था। श्रवणबेलगोलसे उत्तरकी ओर करीब एक मील दूर स्थित जिननाथपुरमें होयसलकालका अद्वितीय मंदिर आज भी अपनी अपूर्व छटा दिखा रहा है। जिननाथपुरको होयसल नरेश विष्णुवर्द्धनके सेनापति गंगराजने सन् १ १७ ई० में बसाया था। शान्तिनाथ बस्ती नामक मंदिर यहां प्रधान है। दण्डाधिप रेचिमय्यने इसे बनवाया था। यह मंदिर होयसल-शिल्प कारीगरीका एक अद्भुत सुन्दर नमूना है। इसमें एक गर्भगृह है जिसके आगे एक सुखनासी है। उसके सामने एक भव्य नवरंग है। गर्भगृहमें सिंहासनपर शान्तिनाथकी एक अद्भुत ही सुन्दर अलंकीर्ण मूर्ति विराजमान है। गर्भगृहके द्वारपर

---

१—जैन — ...

दोनों मार्गोमें द्वारपालकोंकी शिला मूर्तियां खडी की गई हैं। नवरङ्गके स्तम्भ सुन्दर खुदे हुए हैं। उनपर मणियोंकी पच्चीकारी की गई है। रङ्ग मंडपके ताक जो किसी समय मूर्तियोंसे सुसज्जित थे, अब रिक्त पड़े हैं। बाहरी दीवारोंपर बड़ी-बड़ी मूर्तियां एक पंक्तिमें विराजमान हैं। इनमेंसे कुछ अपूर्ण हैं। मूर्तियोंमें जिन, यक्ष, यक्षिणियां ब्रह्म सरस्वती मन्मथ, मोहिनी, ढोलवाले, नर्तक, गायक आदि हैं।"[1] इसप्रकार यह मंदिर होय्सल कलाका अपूर्व सौंदर्य-निलय है। ऐसे ही मंदिर होय्सल राज्यमें ठौर ठौरपर बनाये गये थे।

वीरगल्—

मंदिर और मूर्तियोंके साथ ही होय्सल कालमें वीरोंके पराक्रमको अमर बनाये रखनेके लिये 'वीरगल्' भी बनाये जाते थे। यह वीरगल् भी शिल्पकलाके नमूने होते थे। रणक्षेत्रमें वीरगतिको प्राप्त वीरोंके अतिरिक्त धर्मक्षेत्रमें वीरभाव दर्शानेवाले धर्मवीरोंके भी वीरगल् बनाये जाते थे—सल्लेखनाव्रत धारण करना एक महान् पराक्रम समझा जाता था।

इस प्रकार होय्सल राज्यकालमें जैनधर्म एकवार पुन उन्नतिशील हुआ था और उसने राष्ट्रकी समृद्धिमें उल्लेखनीय भाग लिया। किन्तु जहां एक ओर मुसलिम आक्रमणोंके फलस्वरूप होयसल राज्य छिन्न भिन्न हो गया वहां दूसरी ओर जैनधर्म भी विपक्षियोंके आक्रमणोंसे हतप्रभ हुआ। विजयनगर साम्राज्यमें वह पुन एकवार चमका था, यह आगेके भागमें पाठक पढ़ेंगे। इत्यलम्।

अलीगंज (एटा), } ५-८-४६ }

—कामताप्रसाद जैन।

---

१—श्रवणबेलगोल पृ० ५०–५१।